आदर्श नाटक

सम्पादक :—

प्रिंसिपल सूर्यभानु

प्राप्ति स्थान :—

योगेन्द्रपाल खन्ना एण्ड सन्ज़ लिमिटेड

८१/८२ एफ़, कमला नगर,

सब्ज़ी मण्डी, दिल्ली।

द्वितीय संस्करण] [मूल्य २)

आदर्श नाटक

सम्पादक :
प्रिन्सिपल सूर्य भानु
डी०ए०वी० कालेज, शोलापुर !

द्वितीय संस्करण]

[मूल्य २) रु०

प्रकाशक—

साहित्य भवन

दिल्ली।

मुद्रक—

इन्द्रप्रस्थ प्रिंटिंग प्रैस,

क्विन्स रोड दिल्ली

भूमिका

नाटक का मुख्य प्रयोजन उसका रंगमंच पर खेला जाना है। हिन्दी में कुछ समय पहले तक रंगमंच का लगभग अभाव था, और आजकल हिन्दी रंगमंच अपनी शैशवावस्था में है, फिर भी यह एक सन्तोष का विषय है कि हिन्दी नाटक अब अपनी शैशवावस्था पार कर चुका है। रंगमंच का अभाव होते हुए भी श्री जयशंकर प्रसाद जैसे श्रेष्ठ लेखकों ने पाठ्य हिन्दी-नाटकों से हिन्दी साहित्य की वास्तविक श्री वृद्धि की है।

आजकल रंगमंच के लिये भी हिन्दी नाटक लिखे जा रहे हैं। श्री सेठ गोविन्ददास के नाटक पूरी सफलता के साथ रंगमंच पर खेले जाते हैं।

इस संग्रह में हम हिन्दी के कुछ अत्यन्त श्रेष्ठ नाटकों को एकत्र कर रहे हैं। इन नाटकों को हम आदर्श-नाटक भी कह सकते हैं। इसका कारण यह है कि यह संग्रह मुख्यतः विद्यार्थियों के लिए किया जा रहा है और अपने विद्यार्थियों

के सम्मुख हम उनके हृदय में ऊँची भावनाएँ तथा श्रेष्ठ आदर्श के लिये प्रेम और उत्साह उत्पन्न करने वाले नाटक प्रस्तुत करना चाहते हैं।

इस दृष्टिकोण से, आशा है, इस संग्रह के पाठक और आलोचक हमारे इस प्रयत्न को पसन्द करेंगे।

—सूर्यभानु

सूची

				पृष्ठ
१.	भीष्म प्रतिज्ञा	...	द्विजेन्द्रलाल राय	६
२.	चाणक्य	—	जयशंकर प्रसाद	५६
३.	सुदामा के तन्दुल	...	सेठ गोविन्ददास	१०५
~~४.~~	~~रेवा~~		~~चन्द्रगुप्त विद्यालंकार~~	~~१२३~~
४.	मुक्तधारा	...	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१२३
५.	भगवान	...	विष्णु प्रभाकर	१६५

आदर्श नाटक

भीष्म-प्रतिज्ञा

(द्विजेन्द्रलाल राय)

नाटक के पात्र

शान्तनु	...	...	हस्तिनापुर के राजा
भीष्म	...	...	शान्तनु के बड़े पुत्र
व्यास	...	...	एक महर्षि
माधव	...	...	शान्तनु का सखा
परशुराम	...	...	भीष्म के गुरु
अम्बा	...	...	काशी नरेश की बड़ी कन्या
सत्यवती	...	...	धीवर राज की कन्या

शिव, पार्वती, गंगा, धीवर राज, धीवर रानी आदि ।

भीष्म-प्रतिज्ञा

पहला दृश्य

स्थान—व्यास के आश्रम का उपवन

समय—कुछ दिन रहे

[व्यासदेव और भीष्म-पितामह टहल रहे हैं]

व्यास—धर्मका सूक्ष्म तत्त्व बहुत ही गूढ़ है। शास्त्र में लिखा है—धर्म का तत्त्व गुहा में छिपा हुआ है।

भीष्म—उसे मैं कहाँ खोजूँ?

व्यास—अपने ही हृदय में।

भीष्म—उसे पाऊँगा कैसे?

व्यास—मन एकाग्र करो और कान लगा कर सुनो; तुम्हें अपने हृदय-मन्दिर में वह सुमधुर, ढका हुआ, ध्रुव, गाढ़, गम्भीर संगीत सुन पड़ेगा।

भीष्म—कहाँ!—कुछ भी तो नहीं सुन पड़ता प्रभो!

व्यास—निश्चय सुन पड़ेगा। देवव्रत, मैंने तुमको दिव्य ज्ञान दिया है। हाँ, अब की बार सुनो—सुनो; उस धर्म-संगीत की मधुर झनकार हृदय-वीणा के तारों में सुन पड़ती है। सुनते हो?

भीष्म—हाँ सुनता हूं, जैसे दूर पर समुद्र की लहरों का अस्पष्ट शब्द सुन पड़ रहा है।

व्यास—उसका अर्थ समझते हो ?

भीष्म—ज़रा भी नहीं।

व्यास—फिर मन लगा कर सुनो।

भीष्म—सुन रहा हूँ।

व्यास—सुनो देवव्रत, वह महा संगीत गूँज रहा है कि "दूसरों के लिए स्वार्थ का त्याग ही सब धर्मों की जड़ है।"

भीष्म—त्याग ऋषिवर ?

व्यास—हाँ त्याग। देवता के चरणों में हँसते हँसते अपने सुख का बलिदान। यही परम धर्म है। यही सनातन धर्म है। और जितने धर्म हैं, सब इसी की सन्तान हैं।

भीष्म—देवता के चरणों में अपने सुख का बलिदान ?

व्यास—हाँ, देवता के चरणों में अपने सुख का बलिदान—यही महाधर्म है।

भीष्म—और वह देवता कौन है ?

व्यास—मनुष्य।

भीष्म—मनुष्य अपने सुख का बलिदान क्यों करे ?

व्यास—परम सुख—सबसे बड़ा सुख—पाने के लिए।

भीष्म—प्रभो, वह सुख क्या है ?

व्यास—विवेक की जयध्वनि, आत्मा का सन्तोष, मनुष्य का आशीर्वाद यही वह महा सुख है। स्वार्थत्याग से मिलने वाली परम शान्ति ही वह महासुख है। इसके आगे स्वार्थ-सिद्धि का

साधारण सुख फीका पड़ जाता है। वैसे ही फीका पड़ जाता है, जैसे सूर्य के उदय होने पर चन्द्रमा का बिम्ब। स्वार्थ के बलिदान से मनुष्य की जय होती है—सभ्यता आगे बढ़ती है। सभ्यता का सार अंश यही है। इस महान् उद्देश्य के लिए अपने कर्त्तव्य का पालन करने में ही महासुख है, देवव्रत !

भीष्म—समझ रहा हूँ प्रभो।

व्यास—मन को स्थिर करके इस मन्त्र का जप करो। धीरे धीरे स्पष्ट, खूब ही स्पष्ट, यह संगीत सुन पड़ेगा। यह वह संगीत है, जिसमें सारी पृथ्वी के सब संगीत सम्मिलित होकर सम स्वर से बज उठते हैं। यह वह साम-गान है, जो मधुर वंशी के शब्द से आरम्भ होकर प्रबल शृङ्गनाद के रूप में समाप्त होता है।--मन्त्र का जप करो।

भीष्म—जो आज्ञा मुनिवर।

व्यास—सन्ध्याकाल आ गया। आश्रम के भीतर चलो।

(दोनों का प्रस्थान)

———

दूसरा दृश्य

स्थान—नर्मदा का एक खेवा-घाट

[धीवर-राज की कन्या सत्यवती अकेली टहल रही है]

सत्यवती—सूर्य अस्त हो गये—परदेशी के हृदय-पट में बाल्य-स्मृति के समान। धीरे धीरे सैंकड़ों चमकीले नक्षत्र एक-करके आकाश में प्रगट होते जा रहे हैं।

[सखियों का प्रवेश]

१ सखी—लो बहन, मत्स्यगन्धा तो यहाँ है।

२ सखी—और अकेली है।

३ सखी—चलो सखी, घर चलो।

४ सखी—घर चलो सखी।

सत्यवती—मैं आती हूं, तुम चलो।

१ सखी—यह क्या! हम तुमको इस समय यहां अकेले छोड़ कर भला जा सकती हैं!

सत्यवती—मैंने कह दिया, तुम चलो। (रूखे स्वर से) दिक क्यों करती हो!

२ सखी—यह क्यों! क्रोध क्यों करती हो सखी, हम से क्या कसूर हुआ!

सत्यावती—(नर्म होकर, तुमने कुछ कसूर नहीं किया सखियो, मेरे इस रूखेपन के लिए मुझे क्षमा करो प्यारी सखियो।
(हाथ जोड़ती है)

३ सखी—यह क्या करती हो राजकुमारी ?

सत्यवती—सचमुच मैं तुमसे क्षमा की प्रार्थना करती हूं।

४ सखी—अच्छा हमने माफ़ किया। अब घर चलो।

सत्यामती—तुम मुझे अपना मित्र समझती हो ?

१ सखी—(हँस कर) मित्र समझती हैं ?—कौन कहता है ?

२ सखी—मित्र समझती हैं ? बिलकुल नहीं—ज़रा भी नहीं।

३ सखी—तुमको हम सब दुश्मन की नज़र से देखती हैं।

४ सखी—हम मित्र समझती हैं या नहीं, यह पूछ रही हो।

(इसी बीच में धनुष बाण हाथ में लिये राजा शान्तनु आ कर दूर पर खड़े खड़े सब देखते और सुनते हैं। सत्यवती धीरे धीरे सखियों के साथ जाती है और शान्तनु खड़े रहते हैं।

[दो धीवरों का प्रवेश]

१ धीवर—आज कुछ भी हाथ नहीं लगा।

२ धीवर—हां, कुछ भी नहीं लगा।

१ धीवर—चलो, घर लौट चलें।

२ धीवर—चलो।

१ धीवर—अच्छा क्यों जी, यह रात है या दिन ?

२ धीवर—रात है।

१ धीवर—तो फिर अँधेरा क्यों नहीं है ?

२ धीवर – देखते नहीं, चांद निकला है !

१ धीवर—ठीक है। लेकिन यह चांद कैसा भयानक है !—मानो जल रहा है।

धीवर—सच कहते हो ! ओह, इसकी ओर तो देखा नहीं जाता !

१ धीवर—अच्छा, बताओ भाई, चांद से अधिक उपकार होता है, या सूर्य से ?

२ धीवर—सू से।

१ धीवर—अरे दूर हो !

२ धीवर—क्यों ?

१ धीवर—चांद से अधिक उपकार होता है।

२ धीवर—कैसे ?

१ धीवर-अरे देखते नहीं हो भाई, चांद न होता तो बड़ा विकट अँधेरा होता। चांद ही तो अँधेरी रात में उजियाला करता है।

२ धीवर—और सर्य ?

१ धीवर-वह तो दिन को उजियाला करता है। दिन को तो सूर्य की ज़रूरत ही नहीं है।

२ धीवर—तुमने तो खूब सोचा।

१ धीवर—सोचते सोचते ही तो दुबला हो गया हूँ।

(यह धीवर खूब मोटा-ताज़ा था)

२ धीवर—सो तो देख ही रहा हूं।

१ धीवर—अरे, अरे वह कौन है ?

२ धीवर—कहाँ !

१ धीवर—(शान्तनु की ओर उँगली से दिखा कर) वह—वह !

२ धीवर—आदमी है।

१ धीवर—जीता है ?

२ धीवर—नहीं रे, मर गया है।

१ धीवर—कैसे जाना ?

२ धीवर—बिल्कुल हिलता डुलता नहीं है। जीता आदमी तो हिलता-डुलता है।

१ धीवर—और मरा आदमी शायद ताड़ के पेड़ की तरह सीधा खड़ा रहता है ?

२ धीवर—यह भी सच है। तब तो गड़बड़झाले में डाल दिया !

१ धीवर—बहुत बड़े गड़बड़झाले में। इस का सुलझना सहज नहीं है।

२ धीवर— कैसे सुलझेगा ! अगर यह आदमी जीता है, तो फिर हिलता-डुलता क्यों नहीं ?

१ धीवर—किसने इसे न हिलने-डुलने के लिये अपने सिर की कसम खाई है !

२ धीवर—और अगर मर ही गया है तो फिर स्वांग की तरह यों खड़ा कैसे है ? ऐसा तो कभी देखा नहीं।

१ धीवर—हाँ, याद तो नहीं पड़ता कि कभी ऐसा देखा है।

२ धीवर—यह सन्देह दूर कैसे हो ?

१ धीवर—दूर होते तो नहीं देख पड़ता ।

२ धीवर—अच्छा, इसी आदमी से पूछा जाय तो कैसा ?

१ धीवर—(चिन्तित भाव से) हाँ—यह तो कुछ ठीक जान पड़ता है ।

२ धीवर—तो चलो, पूछें ।

(दोनों शान्तनु के पास जाते हैं ।)

१ धीवर—एजी ! एजी !

२ धीवर—ओ भले आदमी !

१ धीवर—बोलता भी नहीं है !

२ धीवर—तो फिर मर ही गया होगा ।

१ धीवर—तो यही क्यों नहीं कहता कि मैं मर गया हूँ । हम निश्चिन्त हो कर अपने घर चले जायँ ।

२ धीवर—ना, गड़बड़झाला जैसे का तैसा बना रहा । चलो, घर चलें ।

(दोनों का प्रस्थान)

शान्तनु—बरसात की बढ़ी हुई नदी अपने दोनों किनारों को छाप कर वेग से बढ़ी जा रही है । शरद ऋतु का पूर्ण चन्द्रमा उदय हो गया है । कोकावेली के उज्ज्वल फूल खिल रहे हैं । कोई त्रुटि नहीं है, कोई कमी नहीं है । स्वर्ग की सी इस सुन्दर ज्योति में वह कन्या कौन थी ? किस की कन्या थी ? उस का घर कहाँ है ?—इधर ही तो शायद गई है !

[माधव का प्रवेश]

माधव—मित्र, मृग भाग गया।

शान्तनु—भाग जाने दो। लेकिन मैं धीवरराज के यहाँ जाऊँगा।

माधव—वहां किस लिए ?

शान्तनु—यों ही ज़रा उससे मिलना चाहता हूं।

माधव—अच्छा चलो; इस राह से चलो।

(दोनों का प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—धीवर-राज के रहने का घर

समय—प्रातःकाल

[धीवर-राज बड़े ही क्रोध के भाव से टहल रहा है। उसका मन्त्री भी उसके पीछे-पीछे है।]

धीवर०—मैं खफ़ा हूं—बहुत ही खफ़ा हूं। रानी का ही दिमाग़ खराब नहीं है। लेकिन अगर घर भर का—नहीं इतना—नहीं, मैं कल ही राज छोड़ कर चला जाऊँगा।

मन्त्री—जी हुजूर—

धीवर०—मैं 'जी हुजूर' नहीं चाहता, काम चाहता हूं। अगर काम नहीं कर सकते, तो चले जाओ।

मन्त्री—जी—काम करूंगा नहीं तो क्या।

धीवर०—'तो क्या'—सब के मुंह से यही एक बात सुन पड़ती है। 'तो क्या'—मुझे नहीं जान पड़ता, 'तो क्या' में ऐसा क्या विशेष गुण है। मैं—नहीं, मैं अपनी जान दे दूंगा।

[धीवर-राज की रानी का प्रवेश]

धी० रानी—जान दोगे तो दे दो।—ये जान दे देंगे! जान दे देना ऐसी ही सहज बात है न?—जान दे देंगे!—रोज़ ही तो

जान दे देने की धमकी देते हो। लेकिन जान देते एक दिन भी न देखा। जान दे देंगे। दे न दो। दे दो, मेरे सामने जान दो। आज ही जान दे दो। अभी दे दो।—चुप क्यों हो गये? जान दे दो।

धीवर०—तो दे दूं?

धी० रानी—दे दो।

धीवर—तो फिर मन्त्री, जान दे दूं? दे दूं?

मन्त्री—जी नहीं, ऐसा कोई करता है!

धीवर०—कोई ऐसा नहीं करता?—सुना रानी, मन्त्री मना कर रहा है। नहीं तो मैं आज निश्चय जान दे देता।

धी० रानी—क्यों! (मंत्री से) तुम क्यों मना करते हो? तुम मना करने वाले कौन? मैं रानी हूँ—मैं हुक्म देती हूँ। मेरे हुक्म को टुलखते हो! जाओ, मैं तुमको तुम्हारे काम से बरतरफ़ करती हूं।

धीवर०—कैसे!—मन्त्री न होगा, तो राज्य का काम किस तरह चलेगा?

धीवर रानी—बहुत बड़ा भारी राज्य है न तुम्हारा! धीवरों के चौधरी हो। बस, इतने ही से राजा हो गये! राज्य एक गाँव और नदी का आधा हिस्सा, यही तो राज्य है न? नदी या तालाब में जाल डालकर मछली पकड़ना—बस यही तो राज-काज है? लगे डरवाने कि "राज्य का काम किस तरह चलेगा?" राज्य का काम मैं चलाऊंगी। तुम जान दे दो।

धीवर०—तुम्हारे कहने से दे दूं ? —रानी भीतर जाओ!

धी० रानी—निकल—निकल घर से। नहीं तो—

धीवर०—नहीं तो—क्या करेगी ?

धीवर रानी०—नहीं तो झाड़ू मार कर निकालूंगी।

धीवर०—झाड़ू मारकर निकालोगी ?

धी० रानी—झाड़ू मारकर निकालूंगी।

धीवर०—क्या, झाड़ू मारकर निकालेगी ?

धी० रानी—हाँ हाँ झाड़ू मारकर निकालूंगी।

धीवर०—भला किसी ने सुना है कि किसी देश की रानी ने कभी उस देश के राजा को झाड़ू मार कर निकाला है!—मन्त्री, तुमने सुना है ?

मन्त्री—जी नहीं।

धी० रानी०—अच्छा तो अब देख लो।　　　　(प्रस्थान)

मन्त्री—राजा साहब, खिसक जाइए। अभी समय है, पहले ही से खिसक जाइए। रानी बहुत खफ़ा हैं।

धीवर०—क्या! मैं राजा हूँ। राजा होकर एक औरत के डर से खिसक जाऊंगा—भाग जाऊंगा ? कभी नहीं। अरे कोई है ? मेरी कमान और तीर तो ले आ। और—

मन्त्री—कुछ न कर सकियेगा, कहता हूं खिसक जाइये। कुछ न कर सकियेगा।

धीवर०—ऐसी बात है ?

मन्त्री—कह तो रहा हूँ, बस खिसक जाइए।

धीवर०-अच्छा, जब तुम कह रहे हो और तुम मेरे मन्त्री हो, तब तुम्हारा कहा न टालूंगा। (जाना चाहता है)

[शान्तनु और माधव का प्रवेश]

माधव—यही शायद धीवर-राज है !—महाशय, आप ही क्या यहां के राजा हैं ?

धीवर०—नहीं तो क्या तुम राजा हो ? देखो—तुम लोग खबर दिए बिना—इस तरह मेरे पास आकर खड़े हो गए ! और फिर एकदम आकर पूछने लगे—'महाशय, आप ही क्या यहाँ के राजा हैं ? यह तुम्हारा कैसा बर्ताव है ? जानते हो, मेरे पास जो लोग आते हैं, वे क्या करते हैं ?

माधव—जी नहीं, सो तो नहीं जानता।

धीवर०-वे लोग पहले इस मन्त्री के फुफेरे साले को भेंट भेजते हैं।

माधव—जी, फुफेरे साले को ?

धीवर०—हाँ, फुफेरे साले को। उसके बाद मन्त्री के मौसेरे भाई के ससुर के सामने हाथ जोड़ कर खड़े होते हैं।

माधव—बाप रे ! इतना अदब कायदा है !

धीवर०— मैं राजा हूं।—क्यों मन्त्री ?

मन्त्री—जी राजा साहब।

माधव—इस बात को कौन नहीं मानता !

धीवर०—मानते हो ?

माधव—खैर मान लिया।

धीवर०—इस 'खैर' का क्या माने ?—मन्त्री !

मन्त्री—जी—इस 'खैर' का मतलब तो मैं भी अच्छी तरह नहीं समझा।

धीवर०—यहाँ 'खैर-फैर' कहने से काम नहीं चलेगा। मैं राजा हूँ, अब कहो क्या कहना चाहते हो ?

माधव—अब मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरे प्यारे मित्र—आपकी लड़की से विवाह करना चाहते हैं।

धीवर०—ब्याह !

माधव—कोई ज़रूरत तो नहीं थी, लेकिन इनका यह न जाने कैसा कुसंस्कार है। इसी जगह पर इनमें ज़रा कविता की कमी है। आप ब्याह कर देने के लिये राजी हैं ?

धीवर०—मन्त्री !

मंत्री—आपके मित्र के साथ हमारे राजा साहब को अपनी लड़की का ब्याह कर देना होगा ?

माधव— बस बस, आपने ठीक समझ लिया।

मन्त्री—अब सवाल यह है कि आपके मित्र हैं कौन ?

(धीवर-राज सिर हिलाता हुआ मन-ही-मन मन्त्री की बुद्धि को सराहता है।)

माधव—इस सवाल को मैं अभी हल किये देता हूं। मेरे मित्र हैं हस्तिनापुर के राजा।

मन्त्री—(आश्चर्य से) हस्तिनापुर के राजा !

माधव—जी हाँ।

मन्त्री—हस्तिनापुर के महाराज ?

माधव—हाँ साहब, हाँ।

मन्त्री—महाराज शान्तनु ?

माधव—बिल्कुल ठीक।

मन्त्री—(धीवर राज से) सिंहासन से उठ बैठिए—सिंहासन से उठ बैठिए।

धीवर०—क्यों ? क्यों ? सिंहासन से क्यों उठूं ?

मन्त्री—पहले उठ बैठिए, फिर कुछ कहिएगा। नहीं तो—

धीवर०—नहीं तो क्या ?

मन्त्री—नहीं तो सब राज गया समझिए।

धीवर—ऐं ! ऐं !—सचमुच, नहीं तो राज्य गया ? (कुछ उठ कर) नहीं तो राज्य गया ?

मन्त्री—उठिए !

(धीवर-राज सिंहासन से उठ कर खड़ा हो जाता है)

मन्त्री—महाराजा, हस्तिनापुर नरेश, हमारा जन्म आज सफल हुआ। आप इस सिंहासन को ग्रहण कीजिए।

धीवर०—(आश्चर्य से) सिंहासन को ग्रहण कीजिए ? यह क्या ?

शान्तनु—इसकी ज़रूरत नहीं है। धीवर राज, आप सिंहासन पर बैठिए ?

धीवर०—(घबराये हुए भाव से) मन्त्री !—

मन्त्री—बैठिए, महाराज खुद आज्ञा दे रहे हैं—बैठ जाइए।

(धीवर-राज बैठ जाता है)

माधव—अब हमारी प्रार्थना ?

धीवर०—मन्त्री !

(मन्त्री धीवर-राज के कान में कुछ कहता है)

धीवर०—ज़रूर—महाराज, मैं अभी आता हूँ।

(मन्त्री और धीवर-राज का प्रस्थान)

माधव—जान पड़ता है, धीवर-राज अपनी स्त्री से सलाह करने गया है। महाराज, इस गंवार उजड्ड को देखकर भी क्या इसकी कन्या के साथ ब्याह करने को जी चाहता है ?

शान्तनु—लेकिन हम लोगों को यह पता लगा है कि वह इस धीवर की कन्या नहीं है।

माधव—इसकी पाली हुई कन्या तो है ! इस असभ्य से उस ने शिक्षा तो पाई है !

शान्तनु—सुना है वह किसी ऋषि के वरदान से अनन्त-यौवना है—वह समझदार बुद्धिमती भी है।

माधव—हाँ यह ठीक है। मगर इस प्रकार अज्ञात-कुलशीला के साथ ब्याह करना युक्ति-संगत नहीं हो सकता महाराज।

शान्तनु—मित्र, मुझे यह सब सोचने का अवकाश नहीं है। मैं उससे विवाह करना चाहता हूं।

[धीवर-राज और उसके मन्त्री का प्रवेश]

माधव— रानी ने क्या निश्चय किया ?

धीवर०—रानी ने क्यों ?

मन्त्री—महाराज के कोई पुत्र मौजूद है ?

माधव—बेशक।

मन्त्री—वही तो !

माधव—'वही तो' क्या ?

मन्त्री—राजासाहब, वही तो !

धीवर०—वही तो !

माधव—राजासाहब, यह ब्याह कर देना क्या आपको मंजूर है ?

धीवर०—वही तो !

माधव—तो मंजूर है ?

धीवर०—वही तो !—क्यों मन्त्री !

मन्त्री—वही तो।

धीवर०—वही तो।

माधव—मंजूर है या नामंजूर ?

मन्त्री—वही तो।

धीवर०—वहीं तो।

माधव—एक जवाब दीजिए।

धीवर०—वही तो।

माधव—यही क्या तुम्हारा आखिरी जवाब है ?—बस 'वही तो' ?

धीवर०—मन्त्री।

(मन्त्री धीवर-राज के कान में कुछ कहता है।)

धीवर०—सुनो, मेरी यह ज़िद है कि प्राण रहें चाहे जायँ, मेरी लड़की का लड़का ही बाद को राजा हो। इस शर्त पर क्या महाराज को ब्याह करना मंजूर है?—सीधी सी बात है।—मन्त्री, कहो—समझाकर कहो।

मन्त्री—महाराज, हमारे राजासाहब की यह प्रतिज्ञा है कि महाराज के बाद इस कन्या से पैदा हुआ लड़का ही हस्तिनापुर की गद्दी का राजा हो। इस पर क्या आप राजी हैं?

शान्तनु—नहीं, सो कैसे होगा? हमारा बड़ा लड़का मौजूद है।

मन्त्री—तो फिर महाराज शान्तनु, यह ब्याह नहीं हो सकेगा।

शान्तनु—यही क्या तुम्हारे राजा का संकल्प है।

धीवर०—हाँ—यही—मेरा क्यों मन्त्री—स्थिर संक—अभी क्या कहा था?

माधव—संकल्प। चलिए महाराज। क्या! आप क्या सोच रहे हैं!

शान्तनु—धीवरराज, आपकी मर्जी के खिलाफ मैं आपकी कन्या से ब्याह नहीं करना चाहता। कुँआरी कन्या पर पिता का अधिकार होता है धीवर-राज। तो फिर जाता हूं।—आओ मित्र।

(शान्तनु और माधव का प्रस्थान)

धीवर०—मन्त्री !

मन्त्री—जी।

धीवर०—मुझे भीतर ले चल कर बिछौना पर लिटा दो। लेट रहूं। नहीं तो—नहीं तो—

मन्त्री—नहीं तो ?

धीवर०—नहीं तो शायद यहां आँखें बन्द हो जायँगी, दन्त कपाट लग जायँगे।

(मन्त्री लेकर जाता है)

———

चौथा दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर के महल का एक हिस्सा।

समय—प्रातःकाल

[भीष्म अकेले एक खंभे से पीठ लगाये खड़े हैं]

भीष्म—पराये हित के लिए अपने स्वार्थ का त्याग ही सब धर्मों की जड़ है। व्यासदेव का बताया वही मधुर संगीत निरन्तर अन्तःकरण में ध्वनित हुआ करता है। वह धीरे धीरे हृदय में शक्ति को जमा करता हुआ, नदी का कल-नाद जैसे बढ़िया के गंभीर शब्द का रूप धारण करता हुआ सुन पड़े, वैसे ही सुन पड़ रहा है।

[आप ही आप बड़बड़ाते हुए माधव का प्रवेश]

माधव—इसी को कहते हैं—"घर का खाकर वन के ढोर चराना।" अरे, वह अनन्त यौवना है तो तुम्हारा क्या ?—

भीष्म—चाचा, आप, आप-ही-आप क्या कह रहे हैं ?

माधव—(जैसे सुना ही नहीं) अरे भाई, वह अगर सदा जवान रहेगी, तो इसमें तुम्हारा क्या है ?

भीष्म— कौन सदा जवान रहेगी ?

माधव—(उसी भाव से) उसी दिन से मुरझाये जा रहे हैं।

भीष्म—कौन ?

माधव—और कौन ? तुम्हारे बाप।—ए लो ! कह ही दिया।

भीष्म—हाँ चाचा जी, पिता जी को क्या हो गया है ?

माधव—कह ही दूँ। और कब तक दबा रक्खूँगा। राज्य में अशान्ति है, घर में अशान्ति है और क्यों ? इसलिए कि—

भीष्म—(आग्रह के भाव से) चाचा, कहिए तो, पिता जी की यह दशा क्यों हुई है ? आप जानते हैं ?

माधव—अरे—जानता क्यों नहीं, सब जानता हूँ।

भीष्म—तो बताइए न। मैं उनसे इसका कारण पूछता हूं, तो वे कुछ उत्तर ही नहीं देते हैं।

माधव—यही तो बात है। इधर तो हस्तिनापुर के राजा—भारत के सम्राट् हैं, लेकिन उधर बेचारे बहुत सीधे और आवश्यकता से अधिक शरमीले हैं।

भीष्म—क्या हुआ है, बताइए न ? पिता जी धीरे-धीरे पीले, दुबले और उदास क्यों होते जाते हैं ?

माधव—इसका कारण बस—उससे विवाह करना चाहते हैं।

भीष्म—किससे ?

माधव—किससे क्या ? एक धीवर की लड़की है। मगर ऋषि के वरदान से वह कभी बूढ़ी न होगी। उसी से ब्याह करने के लिए राजा पागल हो रहे हैं—वज्रमूर्ख हैं।

भीष्म—तो फिर पिता जी उससे ब्याह क्यों नहीं कर लेते ?

माधव—यह भी उनका एक भलमन्सी का कुसंस्कार है। क्षत्रिय राजाधिराज हो—इच्छा हुई है—तलवार खींच लो—ब्याह लो। सो न करके उलटे कन्या के पिता के पैरों पड़ना भर बाकी रहने दिया। मैं साथ न होता तो शायद वह भी बाकी न रहता—पैरों भी पड़ जाते।

भीष्म—लड़की का बाप कौन है ?

माधव—और कौन होगा ?—एक धीवरों का चौधरी है! धीवर-राज है ! मालूम नहीं यह 'राजा' की पदवी उसे किस ने दी है।

भीष्म—तो लड़की का बाप क्या पिता जी के साथ अपनी लड़की का ब्याह करने को राजी नहीं है ?

माधव—देखने से तो नहीं ही जान पड़ा !—उसने कहा कि उस लड़की के जो लड़का होगा वही राजगद्दी पावेगा, यह प्रतिज्ञा अगर महाराज कर सकें, तो वह उनके साथ अपनी लड़की का ब्याह कर सकता है।

भीष्म—पिता जी इस पर राजी नहीं हुए ?

माधव—राजी कैसे होंगे ? अपने सुयोग्य बड़े लड़के को, अर्थात् तुम को, राजा न बनाकर—राजा बनावेंगे एक धीवर कन्या के लड़के को—जिस के शरीर से मछली की गंध आती है ! जाऊँ, वैद्य को ले जाऊँ। जान पड़ता है, महाराज बहुत दिन जियेंगे नहीं। मुझे तो यही—

(प्रस्थान)

भीष्म—इतना ही !—हाय पिता जी, तुम मेरे लिए इतना दुःख उठा रहे हो ! मेरे लिए रोगी, दीन, मलिन और कातर हो रहे हो ! पिता जी, तुम नहीं जानते, मैं तुम्हारे एक इशारे से असाध्य साधन कर सकता हूँ ! प्यारे पिता, तुमने अपने मुँह से यह बात मुझ से क्यों नहीं कही ! इस अधम पुत्र के ऊपर तुम्हें इतना स्नेह—इतना स्नेह है !—मैं भी दिखा दूँगा पिता जी, कि मैं इस अथाह स्नेह के अयोग्य नहीं हूँ !—इतना दुःख मेरे लिए !—मैं तुम्हारे दुःख के चरणों में अपने प्राणों का बलिदान कर सकता हूँ ।

(प्रस्थान)

(आकाश में महादेव और पार्वती का प्रवेश)

महादेव—आज मनुष्य जाति के इतिहास में एक नये अध्याय का आरम्भ हुआ । पार्वती, देखो, यह जो लंबे-चौड़े डील का, गोरे रंग का, सुन्दर युवक चिंता में डूबा हुआ खड़ा है, वह संसार को एक नया गंभीर संगीत सुनावेगा ! वह संगीत, जिसे आज तक कभी किसी ने नहीं सुना ।

पार्वती—कौन-सा संगीत प्राणनाथ ।

महादेव—स्वार्थत्याग का संगीत—यह त्याग सूखी तपस्या, शास्त्र के विचार या धर्म के प्रचार में ही सीमाबद्ध नहीं है ! यह त्याग कर्म के मार्ग में से होकर जगत् के हित के लिए फैला हुआ है । प्रिये, यह युवक त्याग के मन्त्र को वेद वाक्य द्वारा नहीं, जीवन भर के अनुष्ठान के द्वारा जगत् को सुनावेगा ।

पार्वती—यह युवक ? इसका नाम ?

महादेव—देवव्रत ।

पार्वती—इसका पिता कौन है ?

महादेव—राजाधिराज शांतनु ।

पार्वती—इसकी माता कौन है ?

महादेव—तुम्हारी सौत गंगा ।

———

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—धीवर-राज का घर

समय—प्रातःकाल

[धीवरराज, मन्त्री और भीष्म खड़े हैं]

धीवर०—ये हस्तिनापुर के राजा के लड़के हैं ?

मंत्री—हाँ, यही हस्तिनापुर के युवराज हैं।

धीवर०—(भीष्म से) तुम्हारा नाम क्या है ?

भीष्म—देवव्रत।

धीवर०—अच्छा नाम है। सो यहाँ भैया, किस लिए आये हो ?

भीष्म—आत्म-बलिदान देने।

धीवर०—क्या देने ?

भीष्म—आत्म-बलिदान।

धीवर०—यह कौन-सी चीज है ?—मन्त्री !

मन्त्री—युवराज जी, आप अपनी प्रार्थना सीधीसादी भाषा में कहिए। आप क्या चाहते हैं ?

भीष्म—धीवर-राज की कन्या को।

धीवर०—मगर तुम तो अभी कहते थे कि न-जाने क्या देने आये हो ?

(मन्त्री धीवर-राज के कान में कुछ कहता है)

धीवर०—तो ये सहज भाषा में क्यों नहीं कहते ? तुम्हारा अब तक ब्याह नहीं हुआ ?

भीष्म—मैं अविवाहित हूँ।

मन्त्री—अर्थात् आपका ब्याह नहीं हुआ। यही तो ?

भीष्म—हाँ।

धीवर०—मन्त्री, (अलग जाकर मन्त्री से सलाह करके) तो तुम्हारे साथ ब्याह कर देने से इस सत्यवती का लड़का हो तो राजा होगा न ?

भीष्म—आप गलती कर रहे हैं धीवर-राज, मैं आपकी कन्या से खुद ब्याह करने के विचार से यहाँ नहीं आया। मैं इन्हें मातृ-पद के लिए वरण करने आया हूँ।

धीवर०—अब और यह क्या कहा !—मन्त्री, तुम इनके साथ बातचीत करो। मैं इनकी बात को बिल्कुल नहीं समझ पाता।

मन्त्री—युवराज, अनुग्रह करके जो कुछ कहना हो सीधी भाषा में कहिए।—"मातृपद के लिए वरण करने आया हूँ" इसके क्या माने ?

भीष्म—मैं धीवर-राज की कन्या को अपनी माता बनाने के लिए आया हूँ।

धीवर०—यह आदमी पागल जान पड़ता है—मन्त्री !

मन्त्री—लेकिन युवराज, महाराज शान्तनु के साथ सत्यवती के व्याह की निष्फल बातचीत तो एक बार हो चुकी है।

भीष्म—मन्त्री जी, सो मैं जानता हूँ।

मन्त्री—फिर ?

भीष्म—मैं उस व्यर्थ प्रार्थना को लेकर फिर आया हूँ। पिता जी इस कन्या के होने वाले पुत्र को राज्य देना अस्वीकार कर गये थे, क्यों न ?

मन्त्री—जी हाँ. आप ठीक कह रहे हैं।

भीष्म—उन्होंने मेरे ही लिए यह बात नहीं स्वीकार की थी। मैं महाराज का अकेला लड़का हूँ।

मन्त्री—सो सुन चुका हूँ युवराज।

भीष्म—अब मैं उस प्रस्ताव को स्वीकार करता हूँ।

मन्त्री—मगर महाराज शान्तनु ने नामंजूर कर दिया है।

भीष्म—उससे क्या बनता-बिगड़ता है ? राज्य पर दावा मेरा है। मैं उस दावे को छोड़े देता हूँ।

मन्त्री—(विस्मय भाव से) आप राज्य पर से अपना दावा छोड़े देते हैं ?

भीष्म—हाँ, छोड़े देता हूँ।

मन्त्री—अपनी इच्छा से ?

भीष्म—हाँ, अपनी इच्छा से।

धीवर०—पागल है पागल।

मन्त्री—आश्चर्य है।

भीष्म--जगत् में कुछ भी आश्चर्य नहीं है मन्त्री जी। जो जिस काम को कर नहीं सकता, उसे वह आश्चर्य समझता है। एक के लिए जो कठिन या असाध्य है, वही दूसरे के लिए सहज है। इसके सिवा किसी के लिए आज जो कठिन है, वही कल सहज हो सकता है। इसी से कहता हूँ, जगत् में आश्चर्य कुछ नहीं है।

मन्त्री--आप अपने राज्य के दावे को छोड़े देते हैं?

भीष्म--हाँ छोड़े देता हूँ।

मन्त्री--अच्छी तरह सोचकर देख लिया है युवराज? मुट्ठी में आया हुआ एक राज्य--जिस राज्य के लिए सभ्य जातियाँ लड़ मरती हैं, आदमी आदमी का खून करता है, भाई भाई की हत्या करने को तैयार हो जाता है, बेटा भी बाप का दुश्मन बन जाता है--उसी राज्य का दावा आप छोड़े देते हैं?--एक बार फिर सोचकर देखिए।

भीष्म--उसे मैं मुट्ठी भर धूल की तरह छोड़े देता हूँ।

मन्त्री--किस लिए?

भीष्म--पिता की प्रसन्नता के लिए।

मन्त्री--इसी समय?

भीष्म--इसी समय।

धीवर०--युवक, तुम्हारा सिर फिर गया है।

भीष्म--नहीं धीवर राज, मेरा सिर नहीं फिरा। मेरी परीक्षा करालो। आज मुझसे बढ़कर स्वस्थ, स्थिर-संकल्प (अपने इरादे

पर दृढ़), और व्यवस्थित चित्त (होश हवास में) और कोई आदमी इस संसार में नहीं है।

धीवर०--तुम सचमुच राज्य छोड़े देते हो ?

भीष्म—सचमुच छोड़े देता हूँ।

धीवर०—कसम खाते हो ?

भीष्म--कसम खाता हूं।

(धीवर-राज फिर मन्त्री से सलाह करता है)

धीवर०—अच्छी बात है। तो मुझे अब इस ब्याह में कुछ भी उज्र नहीं है।

(धीवर की रानी का प्रवेश)

रानी—मुझे उज्र है।

धीवर०—क्या उज्र है रानी ?

धी० रानी—चुप रहो। मैं रानी हूँ। मैं कहती हूँ कि अभी तक मुझे उज्र है।

भीष्म—क्या ?

धी० रानी—तुम राज्य पर दावा नहीं कर सकते, यह सच है; लेकिन बाद को अगर तुम्हारे लड़के-बाले राज्य पर दावा करें ?

धीवर०—यह भी ठीक है।

भीष्म—हाँ, वे कर सकते हैं। लेकिन उसके लिए मैं क्या कर सकता हूं ?

धी० रानी—तुम कर सकते हो। तुम अगर अपना ब्याह न करो, तो वह खटका मिट सकता है।—क्यों मन्त्री जी ?

मन्त्री—आपने ठीक कहा रानी साहबा; ब्याह ही न करेंगे तो लड़के-बाले कहाँ से होंगे ?

भीष्म—ब्याह का विचार भी छोड़ना होगा ?

मन्त्री—इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

भीष्म—(अर्ध स्वगत) यह तो बहुत ही कठोर त्याग है! और उसके ऊपर पिण्ड-तर्पण से हीन होकर अनन्तकाल तक पुंनाम नरक में निवास करना होगा! यह काम तो बड़ा ही कठोर है! बड़ा ही कठोर है!

मन्त्री—तो युवराज, आप इस बात पर राजी नहीं हैं ?

भीष्म—(अर्ध स्वगत) बड़ा कठोर है!—परन्तु क्या फिर त्याग का महाव्रत इस पहली परीक्षा के ही धक्के से चूर हो जायगा ? मैं क्या मनुष्य नहीं हूँ ?

धीवर०—तो तुम नामंजूर करते हो ?

भीष्म—(घुटने टेक कर और ऊपर की ओर हाथ जोड़ कर) स्वर्ग के देवगण, इस हृदय में बल दो। मैं तुच्छ मनुष्य हूँ—विषयों में आसक्त और दुर्बल हूँ। शक्तिहीन और असहाय हूँ। देवगण बल दो। इस हृदय की वासना को निर्दय निष्ठुर भाव से चूर-चूर कर दो—पीस डालो। सारे अहंकार को दूर कर दो। सब स्वार्थ को भस्म कर दो। मर्मस्थल को गहरे अन्धकार से ढक दो—उसमें प्रकाश की रेखा भी न रहने पावे। देवगण, शक्ति दो।

धी० रानी—पागल है! पागल!

मन्त्री—युवराज, क्या निश्चय किया ?

भीष्म—(उठ कर) धीवर-राज, मेरी इस दमभर की दुर्बलता को क्षमा करो।—मन्त्री, निश्चय कर लिया। अपने ब्याह का इरादा भी मैंने छोड़ दिया।

धी० रानी—कभी ब्याह नहीं करोगे?

भीष्म—कभी ब्याह नहीं करूंगा।

मन्त्री—यही निश्चय है?

भीष्म—यही निश्चय है। मैंने अपने कर्त्तव्य के चरणों में यह लोक और परलोक, दोनों अर्पण कर दिये। आज से देवव्रत सच्चा सन्यासी है। वासना की केंचुली उसने छोड़ दी। सन्देह की काली घटा उड़ गई। आँधी थम गई। ऊपर केवल स्थिर नील आकाश है और नीचे उसके चरणों में सागर गम्भीर शब्द से गरज रहा है।

धी० रानी—तो कसम खाते हो?

भीष्म—मेरी इस प्रतिज्ञा के साक्षी सब देवता हैं।

धी० रानी—मैंने कहा था न मन्त्री—यह युवक पागल है!

भीष्म—ना, मैं पागल नहीं हूं। मैंने पिता को प्रसन्न करके सारे देवों को सन्तुष्ट कर लिया—

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता ही परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥

छठा दृश्य

स्थान--हस्तिनापुर के राजमहल का एक हिस्सा

समय—सन्ध्याकाल

[महाराज शान्तनु और उनका सखा माधव]

शान्तनु—मेरे लिए देवव्रत ने संन्यास ले लिया !

माधव—देख तो यही रहा हूं।

शान्तनु—आश्चर्य है !

माधव—बेशक आश्चर्य है !

शान्तनु--मेरा पुत्र इतना उच्च हृदय और उदार है। पुत्र के गौरव के गर्व से आज मैं फूला नहीं समाता।

माधव—लेकिन अपने लिए गर्व करने को अब कुछ नहीं रहा।

शान्तनु—मेरे लिए मेरा पुत्र आज ब्रह्मचारी हो गया !

माधव—महाराज, इस सत्य के पाश से अपने पुत्र को छुड़ा दीजिये।

शान्तनु—किस तरह ?

माधव—आप इस धीवर की कन्या से विवाह न कीजिए।

शान्तनु—उसे धर्मच्युत होना पड़ेगा।

माधव—क्यों, कुछ उसने तो अपने मन से आप को पति माना नहीं है ?

शान्तनु—देवव्रत को दुख होगा।

माधव—कुछ नहीं होगा।

शान्तनु—मित्र, तुम मेरे 'विदूषक' हो, मन्त्री नहीं हो।

माधव—ऐसा मन्त्री संसार में पैदा ही नहीं हुआ, जो इच्छा के विरुद्ध महाराजा के आगे सफल युक्ति उपस्थित कर सके, विदूषक तो विदूषक ही है। महाराज, कहे देता हूं, इसके लिए आप को पीछे पछताना पड़ेगा।

शान्तनु—पछताना पड़ेगा तो पछता लूँगा।

माधव—तो जाइए। सर्वनाश की राह खुली है। जाइए।

(क्रोध के भाव से प्रस्थान)

शान्तनु-यह मूर्ख नीरस ब्राह्मण मुझे नसीहतें देने आया है!

[भीष्म का प्रवेश]

शान्तनु—प्यारे पुत्र, तुमने मेरे लिये जन्मभर का ब्रह्मचर्य ग्रहण किया है ?

भीष्म—पिता की इच्छा ही मेरी इच्छा है।

शान्तनु—तुम्हारी इस भीष्म-प्रतिज्ञा के कारण देवों ने तुम्हारा नाम भीष्म रक्खा है। और मैं भी पुत्र, तुम्हारी इस अपूर्व पितृ-भक्ति के पुरस्कार में तुमको स्वेच्छा-मृत्यु का वर देता हूँ। तुम जब चाहोगे, तभी तुम्हारी मृत्यु होगी।

भीष्म—पिता का आशीर्वाद शिरोधार्य है।

(प्रस्थान)

(दूसरी ओर से चिन्तित भाव से शान्तनु भी जाते हैं)

दृश्यान्तर

(आकाश में शिव, पार्वती और व्यास का प्रवेश)

व्यास—क्या विश्व भर में किसी ने भी कामदेव को नहीं जीता ?

शिव—एक आदमी ने जीता है।

व्यास—उसका नाम ?

शिव—भीष्म।

व्यास—देवव्रत भीष्म ?

शिव—हाँ, एक देवव्रत भीष्म ही इस जगत् में कामदेव को जीतने वाले हैं। इसी से उनका नाम भीष्म पड़ा है। कामदेव को जीत लिया है—इसी से जगत् में भीष्म अजेय हैं।

व्यास—भीष्म कैसे अजय हैं ?

शिव—उन्होंने अपने शरीर और मन को कर्त्तव्य के चरणों में अर्पण कर दिया है। व्यास, तुमने हो तो उन्हें कर्त्तव्य के महाव्रत की दीक्षा दी है। तुम्हीं उन के गुरु हो।

व्यास—समझ गया भगवन् !—अच्छा, चरणों में प्रणाम करता हूँ।

(प्रणाम और प्रस्थान)

शिव—कैसा आश्चर्य है ?

पार्वती—ऐसा क्या आश्चर्य है, प्राणनाथ !

शिव—प्रियतमे, मैं जानता था कि इस ब्रह्माण्ड भर में अकेला मैं ही कामदेव को जीतने वाला हूँ, लेकिन देखता हूँ, पृथ्वी पर मेरी बराबरी का दावा करने वाला एक महापुरुष और भी है।

पार्वती—वह कौन है नाथ ?

शिव—महामति भीष्म पितामह !

(प्रस्थान)

परदा गिरता है।

——

सातवाँ दृश्य

स्थान—परशुराम के आश्रम के आगे का आँगन

समय—प्रातःकाल

(परशुराम वेदी पर बैठे हैं। सामने अम्बा खड़ी है)

अम्बा—मैं और कुछ नहीं चाहती देव, मैं केवल भीष्म की प्रतिज्ञा को तोड़ना चाहती हूँ। उन के जीवन भर की साधना को निष्फल करूँगी, उनका व्रत नष्ट करूँगी, उन के घमंड को चूर करूँगी। उनके इस बनावटी वेश को छिन्न-भिन्न करूँगी और सारी पृथ्वी को उन का नंगारूप दिखाऊँगी कि देवव्रत एक बना हुआ सन्यासी था।

परशु०—प्रयोजन ?

अम्बा—इस पृथ्वी तल पर नारी की महिमा की फिर से प्रतिष्ठा हो; सिंहासन पर नारी की निर्वासित क्षमता फिर से स्थापित हो; पुरुष स्त्री को उसका न्याय से प्राप्य अधिकार फेर दे; बस यही प्रयोजन है।

परशु०—सो किस तरह ?

अम्बा—चराचर जगत् यह जान ले कि इस विश्व में पुरुष

प्रभु नहीं है, स्त्री ही प्रभु है। जिस कामदेव को भस्म करने के कारण भगवान् शंकर महादेव कहाते हैं, उसी कामदेव के बाण आज इस तुच्छ देवव्रत की प्रतिज्ञा को नहीं डिगा सकते !— भगवन्, प्रकृति के बड़े भारी अनियम को दूर करो, स्त्री जाति के सनातन अधिकार की रक्षा करो, तुच्छ पुरुष के इस घमंड को चूर करो !—बस, इतना ही चाहती हूं।

परशु०—यह देवव्रत आ रहा है! तुम यहाँ से हट जाओ।

(अम्बा का प्रस्थान)

परशु०—यह क्या सच है ? यह क्या मनुष्य से सम्भव है ? अच्छा, परीक्षा करूँगा कि देवव्रत का यह व्रत कितना दृढ़ है।

(भीष्म का प्रवेश)

भीष्म—दास चरणों में प्रणाम करता है। (प्रणाम करना)

परशु०—जय हो देवव्रत !

भीष्म—गुरुदेव, आप ने मुझे याद किया है ?

परशु०—हाँ। कितने ही दिनों से तुम को देखा न था। तुम बहुत ही शिथिल शीर्ण हो गये हो। तुम्हारा वह तेजस्वी दर्पपूर्ण सौम्य मुखमण्डल आज बहुत ही शान्त हो गया है। वह तीक्ष्ण दृष्टि आज झुकी हुई, स्नेहमयी, मलिन और अश्रुपूर्ण देख पड़ती है। मत्थे पर झुर्रियां पड़ गई हैं। आंखों के नीचे स्याही जम गई है। वत्स, जैसे तुम अपने मन में कोई दुश्चिन्ता— कोई गहरी निराशा—धारण किये हुए हो ! कहो देवव्रत, क्या हुआ है ?

भीष्म—गुरुदेव, तब मैं बालक था, अब अधेड़ होने को आया हूँ। दिन-दिन बुढ़ापा सारे शरीर में अपना प्रभाव फैलाता जा रहा है।

परशु०—शरीर में वह तेज भी नहीं।

भीष्म—ना, वह तेज नहीं है।

परशु०—वह देवव्रत, और यह देवव्रत ! इतना अन्तर !

भीष्म—दास को आज किस लिए स्मरण किया है ?

परशु०—याद है, काशीराज के यहाँ जो स्वयम्बर हुआ था उसमें तुम काशीराज की कन्याओं को हर लाये थे ?

भीष्म—याद है गुरुदेव !

परशु०—काशीराज की छोटी दोनों कन्यायें हस्तिनापुर के राजा विचित्रवीर्य की रानी हैं। लेकिन बड़ी कन्या अम्बा अभी तक अविवाहित है।

भीष्म—यह समाचार सुन चुका हूँ।

परशु०—उसी अभागिन ने आज मेरा आश्रय ग्रहण किया है।

भीष्म—समझा गुरुदेव।

परशु०—देवव्रत, तुम उसके साथ ब्याह कर लो।

भीष्म—सो कैसे गुरुदेव !

परशु०—तुमने उस राजकुमारी को छुआ है—उस का हाथ पकड़ा है।

भीष्म—तो भी उस के साथ मेरा ब्याह असम्भव है।

परशु०—असम्भव है !

भीष्म—हाँ, गुरुदेव असम्भव है। भीष्म के भाग्य में से व्याह की रेखा मिट गई है।

परशु०—बड़े आश्चर्य की बात है ! देवव्रत, व्याह क्या पाप है ?

भीष्म—पाप नहीं है। विवाह पुण्य का राज्य है। किन्तु, हाय, आज मैं उस राज्य से सदा के लिये निकाला हुआ हूँ।

परशु०—क्यों ?

भीष्म—मैंने सदा के लिये ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है।

परशु०—किस की आज्ञा से ?

भीष्म—ईश्वर की।

परशु०—ईश्वर की ? ईश्वर कहाँ है ?

भीष्म—अपने ही हृदय में गुरुदेव।

परशु०—यह तुम से किसने कहा ?

भीष्म—महर्षि व्यास ने।

परशु०—वह आज्ञा तुम ने सुनी है ?

भीष्म—सुनी है गुरुदेव। जगद्व्यापी स्वार्थ के युद्ध में, संसार के कोलाहल में, उस आज्ञा को निरन्तर नहीं सुन पाता। लेकिन कभी-कभी वह घड़ी भी आती है, जब उस के गूढ़ स्वर को, उसके गम्भीर आह्वान को, उसके मधुर सङ्गीत को सुन पाताहूँ।

परशु०—तुमने वह आज्ञा सुनी है ?

भीष्म—सुनी है।

परशु०—झूठी बात। मैं तुम्हारा गुरु हूं; मैं आज्ञा करता हूँ, तुम अम्बा के साथ ब्याह करो।

भीष्म—यह असम्भव है गुरुदेव !

परशु०—क्या कहा तुमने ?

भीष्म—असम्भव है !

परशु०—असम्भव है ?

भीष्म—क्षमा कीजियेगा; मैं प्रतिज्ञा के बन्धन में बन्धा हुआ हूँ, मैं जीवन भर के लिये ब्रह्मचारी हूँ।

परशु०—तो क्या मैं यह समझ लूँ कि तुम अस्वीकार करते हो ?

भीष्म—क्या करूँ गुरुदेव ! अब ब्याह करने का मुझे अधिकार ही नहीं है—मैं सत्य के बन्धन में बन्धा हुआ हूँ।

परशु०—उस बन्धन को तोड़ डालो।

भीष्म—क्षमा कीजिए।

परशु०—यही तुम्हारी गुरुभक्ति है !—तुम मेरे शिष्य हो !

भीष्म—आप का शिष्य अवश्य हूं—लेकिन मैं भीष्म हूँ !

परशु०—परशुराम की आज्ञा है—अपना ब्याह करो।

भीष्म—तो फिर मुझे मृत्यु का दण्ड दीजिए, मैं यह आज्ञा न मानूँगा।

परशु०—आज्ञा देता हूं भीष्म, मैं भगवान् हूँ, तुम उस के साथ अपना ब्याह करो।

भीष्म—गुरुदेव, पिता ने मृत्यु के समय मेरा हाथ पकड़ कर मुझसे यह भिक्षा माँगी थी कि "तुम ब्याह करना।" और मैं यह मानता हूँ, कि पिता ही जगत् में प्रत्यक्ष ईश्वर है। लेकिन तो भी मैंने उनका कहा नहीं माना, पिता की आज्ञा के भी ऊपर अपने कर्तव्य को स्थान दिया।—देव, मैं चरणों में गिरकर प्रार्थना करता हूँ, मुझे क्षमा कीजिए।

(प्रणाम करना चाहते हैं)

परशु०—तो तुम अस्वीकार करते हो ?

भीष्म—भगवान्, क्या आप जानते हैं कि जगत् में मेरा नाम भीष्म क्यों पड़ा है ? मैंने अपने मन को तृप्त करके यह नाम नहीं पाया है। गुरुदेव, यह ब्रह्मचर्य व्रत—यह कठोर व्रत—फूलों की कोमल सेज नहीं है। मेरा जीवन मित्रता से खाली है। मेरा सारा जीवन स्त्री के प्रेम से वंचित है। मेरा सारा जीवन सन्तान के सुख से शून्य है। जो पुत्र संसार में सब सुखों का मूलाधार समझा जाता है, जिस पुत्र का मुख देख कर मनुष्य अनायास ही संसार के सब दुखों को, रोग की यन्त्रणा को, दरिद्रता के कोड़े की चोट को, गुलामी की ताड़ना को, दिन भर की उदासी को भूल जाता है, जो पुत्र परदेश में निराशा की शून्यता को पूर्ण करता है—मरने पर परलोक के गहरे अन्धकार को प्रकाशित करता है, उसी पुत्र का मुख देखने के सुख से मैं जन्मभर के लिए वंचित हूँ गुरुदेव ! यह क्या कोई बड़ा भारी सुख है, जिस के लिए मैं गुरु की बात को टालता हूं ?

परशु०—शिष्य, यह ब्याह करके तुम वही सुख पाओगे।

भीष्म—क्षमा करो गुरुदेव, मैं ब्रह्मचारी हूँ।

परशु०—भीष्म, मैं यह अन्तिम बार कहता हूँ।—ब्याह या मौत, जो चाहे सो पसन्द कर लो।

भीष्म—अगर ज़रूरत पड़ेगी तो मैं मौत को ही पसन्द करूँगा।

परशु०—अच्छी बात है। अच्छा तो फिर परसों सवेरे कुरुक्षेत्र में सशस्त्र परशुराम से तुम्हारी भेंट होगी। शस्त्र लेकर आना।

भीष्म—शस्त्र लेकर क्यों आऊँ?

परशु०—देवव्रत, मुझे जान पड़ता है, तुम्हारा वीरता का घमण्ड बहुत बढ़ गया है; इसी से तुम परशुराम की आज्ञा को तुच्छ मान कर अस्वीकार करते हो। मैं तुम्हारे उस घमण्ड को मिटा दूंगा।

भीष्म—मेरी इतनी मजाल नहीं है कि मैं भार्गव के साथ युद्ध करूँ।

परशु०—तुम डरते हो?

भीष्म—भय किसे कहते हैं, सो तो मैं जानता ही नहीं। तो भी मैं गुरु के निकट बिना युद्ध के ही अपनी हार स्वीकार करता हूँ।

परशुराम—तुम क्षत्रिय के लड़के हो! भीरु! मैं तुम्हें युद्ध के लिए बुलाता हूँ!

भीष्म—प्रार्थना करता हूँ। सावधान गुरुदेव, सोये हुए क्षत्रिय के पराक्रम को जगाकर उत्तेजित मत कीजिये।

परशु०—मैं इक्कीस बार इस भारत-भूमि को क्षत्रियों से शून्य कर चुका हूं।

भीष्म—परन्तु उस समय भीष्म नहीं था।

परशु०—इतनी हिम्मत!

भीष्म—गुरुदेव, शिष्य चरणों में प्रणाम करता है।

परशु०—शस्त्र लेकर परसों सवेरे कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध के लिये आना।

भीष्म—अच्छी बात है। गुरु की इस आज्ञा का पालन करूँगा। भीष्म चरणों में प्रणाम करता है।

परशु०—जाओ देवव्रत, युद्ध के लिए तय्यार रहना।

भीष्म—मैं तैयार रहूँगा। [प्रस्थान]

परशु०—आश्चर्य है! भीष्म सच्चा क्षत्रिय है। क्या यह भी सम्भव है? धन्य मेरे प्रिय शिष्य! ऐसा अटल और अचल तो हिमालय भी नहीं होगा। सत्य, यह भी क्या सम्भव है! मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा की शक्ति की परीक्षा करूँगा। देखूँगा, यह तुम्हारी प्रतिज्ञा परशु की धार को सह सकती है या नहीं!

आठवाँ दृश्य

स्थान—गंगातट

समय—प्रातःकाल

[गंगा का प्रवेश]

गंगा—इसी नदी तट पर बहुत दिनों से भीष्म और परशुराम का घोर शस्त्र युद्ध हो रहा है। न कोई जीतता है और न कोई हारता है। संसार ने भय से अवाक् होकर वह युद्ध देखा है... और विस्मय के साथ समुद्र-गर्जन के समान वह समर-कल्लोल सुना है। तो भी, इतने दिन लड़कर भी भीष्म नहीं हारे। धन्य भीष्म! धन्य पुत्र!

[व्यास का प्रवेश]

व्यास—जननी जाह्नवी, व्यास चरणों में प्रणाम करता है।

गंगा—क्या ख़बर है व्यास ?

व्यास—जननी, तुम्हारे किनारे आज मैं यह क्या देख रहा हूँ। मनुष्य और भगवान का यह कैसा घोर और विधि-विरुद्ध युद्ध हो रहा है! क्षत्रिय और ब्राह्मण का—शिष्य और गुरु का संग्राम क्या उचित है? तुम जननी, भय से चुपचाप बिना हिले-डुले इस दुर्घटना को देख रही हो?

गंगा—भय से नहीं व्यास, बड़े ही आनन्द से चुपचाप देख रही हूँ। पुत्र के गौरव-गर्व से आज में फूली नहीं समाती। एक ओर गुरुदेव हैं, दूसरी ओर शिष्य है। ब्राह्मण के सामने क्षत्रिय खड़ा है। भगवान् के विरुद्ध उनका उत्पन्न किया हुआ मनुष्य है, तो भी मेरा पुत्र भीष्म हिमाचल की तरह अटल हो कर युद्ध कर रहा है! किसने कब ऐसा आश्चर्य देखा है? किस का ऐसा पराक्रमी पुत्र है व्यास?

व्यास—तो भी जननी, ब्राह्मण और क्षत्रिय का यह युद्ध अनुचित है।

गंगा—कभी नहीं। पुत्र व्यास, भार्गव ने इक्कीस बार इस पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य कर दिया है। उन्हीं के रक्त-बीज से उद्‌धृत ब्राह्मण के घमण्ड को मिटाने के लिए भीष्म ने जन्म लिया है।

व्यास—मगर ईश्वर के साथ मनुष्य का युद्ध क्या संगत है? क्या वैध और उचित है माता?

गंगा—वत्स व्यास, यह मनुष्य जीवन भी क्या ईश्वर के साथ अनन्त और नित्य युद्ध नहीं है, एक ओर उसके काले रंग के पिशाचों का दल है, और दूसरी ओर असहाय दुर्बल मनुष्य हैं। मनुष्य के दुःखों को देख कर मैं दिन रात निर्जन एकान्त में रोया करती हूँ। रोना निष्फल है, वह बेकार पत्थर पर सिर दे दे मारना है। तुम क्या समझोगे!

व्यास—तो भी माता—

गंगा—व्यास, मनुष्य भ्रान्ति के सागर में पड़ा हुआ है, तो भी वह अपनी शक्ति के बल से तरंग-गर्जन को पद-दलित करता हुआ निर्भय भाव से चला जा रहा है—यह क्या साधारण घटना है ? मनुष्य घने गहरे अन्धकार से निकल कर सूर्य की तरह सभ्यता के प्रकाशपूर्ण मार्ग में जा रहा है—यह क्या तुच्छ बात है ? मनुष्य का जन्म अभाव के गर्भ में हुआ है, और वह स्वार्थ के युद्ध की गोद में पला है, तो भी वह अपनी शक्ति से स्वार्थ-त्याग के शिखर पर चढ़ गया है—यह क्या अत्यन्त सहज गौरव है व्यास ? उन सब मनुष्यों में भी मेरा पुत्र भीष्म सर्वोपरि है, जिस के चरणों में मृत्यु भी शान्त रूप धारण किए लोट रही है, स्वार्थ-त्याग के कोड़े की कड़ी चोट से डर कर सिर नीचा किये हुए पड़ी हुई है !

व्यास—मगर ईश्वर के साथ—

गंगा—मेरे लिए केवल एक ईश्वर है और वे महादेव हैं–मैं उन्हीं की आज्ञा मानती हूँ ।

[महादेव का प्रवेश]

महा०—तो गंगा, मैं आज्ञा देता हूँ कि इस युद्ध को शान्त करो, शान्तिमय जल से इस अग्नि को बुझा दो । देवव्रत इच्छा-मृत्यु हैं, उनकी मृत्यु उनकी इच्छा के अधीन है, और परशुराम भी अमर हैं । इस युद्ध का अन्त नहीं है । गंगा, अगर और कुछ दिन तक यह यद्ध होता रहा, तो प्रलय हो जायगा ।

गङ्गा—जो आज्ञा स्वामी,—लेकिन महादेव, आप ने माता के हृदय से माता का गर्व छीन लिया।

महा०—पर इस युद्ध में परशुराम की ही हार होगी।

(महादेव का प्रस्थान)

गङ्गा—तो फिर वही हो—अच्छा जाओ ऋषिवर। (प्रस्थान)

व्यास—अब द्वेष मिट गया। चराचर जगत् की भ्रान्ति मिट गई। कैसी ग़ल्ती थी! तुम शङ्कर, सचमुच शङ्कर (कल्याण-कर्ता) हो। (व्यास का प्रस्थान)

(भीष्म का प्रवेश)

भीष्म—कहाँ हैं भार्गव? इसी टीले पर उनकी राह देखूँगा।

(टीले पर खड़े होते हैं)

(परशुराम का प्रवेश)

भीष्म—आ गये गुरुदेव! (प्रणाम करते हैं)

परशु०—उठो वीर, आज इस गङ्गातट पर खड़े होकर, भीष्म और परशुराम दोनों, युद्ध करेंगे। आज यह फैसला होगा कि बाहुबल में ब्राह्मण बड़ा है या क्षत्रिय। देवव्रत, अपने को बचाओ।

(दोनों का युद्ध)

(भीष्म की तलवार के प्रहार से परशुराम के हाथ से परशु गिर पड़ता है। परशुराम झुक कर फिर उसे उठाते हैं)

भीष्म—बस, अब नहीं। (तलवार फेंक देते हैं)

परशु०—यह क्या भीष्म, मैं हार नहीं मानूँगा। युद्ध करो! युद्ध करो। देवव्रत, मुझे यही गुरुदक्षिणा दो। युद्ध करो! युद्ध करो! यही अन्तिम बार है—किन्तु इस बार प्रलय होगी।

भीष्म, तलवार लो। विलम्ब नहीं सहा जाता। (परशु उठाते हैं)

(इतने में दोनों के बीच में होकर गङ्गा नदी बहने लगती है। धीरे धीरे नदी का पाट चौड़ा होता चला जाता है। परशुराम अन्तर्धान हो जाते हैं। फिर नदी के बीच से गङ्गा प्रकट होती है)

गङ्गा—शाबाश, देवव्रत शाबाश! मेरे बेटे तुम धन्य हो। भीष्म के अलौकिक अद्वितीय पराक्रम को देख कर विस्मय और आनन्द से संसार के सब लोगों को रोमाञ्च हो आया है। ऊपर आकाश से स्वर्गवासी देवगण तुम्हारे सिर पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं।

(परशुराम का प्रवेश)

परशु०—और देखो वीर, परशुराम अपने शिष्य के गौरव से फूला नहीं समाता।—धन्य हो देवव्रत, मैं भी तुम-सा शिष्य पा कर धन्य हूँ। मैं केवल तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। तुम्हें मारने के लिये नहीं आया था। सचमुच आज मैंने देख लिया कि वीरता में, विक्रम में, साहस में, या स्वार्थ-त्याग में—इस विशाल पृथ्वी मण्डल पर तुम्हारे तुल्य और कोई नहीं।—मेरे शिष्य, तुम धन्य हो! देवव्रत! प्राणाधिक! आओ, तुम को गले से लगा लूँ। (सब का प्रस्थान)

(यवनिका पतन)

———

चाणक्य

(जयशंकर 'प्रसाद')

———

पात्र–परिचय

चाणक्य................मौर्य साम्राज्य का निर्माता।

चन्द्रगुप्त................मौर्य सम्राट्

सिंहरण................मालव कुमार

आम्भीक................तक्षशिला का राजकुमार

नन्द....................मगध सम्राट्

वररुचि................मगध का मन्त्री

राक्षस..................मगध का मन्त्री

पर्वतेश्वर..............पंजाब का राजा

देवबल................मालव राज ब्रह्मचारी

नागदत्त................ ,, ,,

शकटार................मगध का मन्त्री

अलका..................तक्षशिला की राजकुमारी

सुवासिनी..............शकटार की पुत्री

चाणक्य

प्रथम अंक

पहला दृश्य

स्थान—तक्षशिला के गुरुकुल का मठ

चाणक्य और सिंहरण

चाणक्य—सौम्य, अब अवधि पूरी हो चुकी। कुलपति ने मुझे गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी है। केवल तुम्हीं लोगों को अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिये ठहरा था, क्योंकि इस वर्ष के भावी स्नातकों को अर्थशास्त्र का पाठ पढ़ा कर मुझ अकिञ्चन को गुरु-दक्षिणा चुका देनी थी।

सिंहरण—आर्य्य, मालवों को अर्थशास्त्र की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी अस्त्र-शास्त्र की। इसी लिये मैं पाठ में पिछड़ा रहा, क्षमा-प्रार्थी हूँ।

चाणक्य—अच्छा, अब तुम मालव जाकर क्या करोगे?

सिंह०—अभी तो मैं मालव नहीं जाता। मुझे तो तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने की आज्ञा मिली है।

चाणक्य—मुझे प्रसन्नता होती है कि तुम्हारा अर्थशास्त्र पढ़ना सफल होगा। क्या तुम जानते हो कि यवनों के दूत यहाँ क्या करने आये हैं?

सिंह०—मैं उसे जानने की चेष्टा कर रहा हूँ। आर्य्यावर्त्त का भविष्य लिखने के लिये कुचक्र और प्रतारणा की लेखनी और

मसी प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खण्ड-राज्य द्वेष से जर्जर हैं। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा।

(सहसा आम्भीक और अलका का प्रवेश—)

आम्भीक—कैसा विस्फोट ? युवक, तुम कौन हो ?

सिंह०—एक मालव।

आम्भीक—नहीं, विशेष परिचय की आवश्यकता है।

सिंह०—तक्षशिला गुरुकुल का एक छात्र !

आम्भीक—देखता हूं कि तुम दुर्विनीत भी हो !

सिंह०—कदापि नहीं राजकुमार ! विनम्रता के साथ निर्भीक होना मालवों का वंशानुगत-चरित्र है, और मुझे तक्षशिला की शिक्षा का भी गर्व है।

आम्भीक—परन्तु तुम किसी विस्फोट की बातें अभी कर रहे थे। और चाणक्य, क्या तुम्हारा भी इसमें कुछ हाथ है ?

(चाणक्य चुप रहता है।)

आम्भीक—(सक्रोध)—बोलो ब्राह्मण, मेरे राज्य में रह कर मेरे अन्न से पल कर, मेरे ही विरुद्ध कुचक्रों का सृजन !

चाणक्य—राजकुमार, ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है; वह स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है। यह तुम्हारा मिथ्या गर्व है। ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी, स्वेच्छा से इन माया-स्तूपों को ठुकरा देता है। प्रकृति के कल्याण के लिये अपने ज्ञान का दान देता है।

आम्भीक—वह काल्पनिक महत्त्व मायाजाल है; प्रत्यक्ष

नीच कर्म्म उन पर पर्दा नहीं डाल सकते।

चाणक्य—सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय! इसी से तो दस्यु और म्लेच्छ साम्राज्य बना रहे हैं और आर्य्यजाति पतन के किनारे पर खड़ी एक धक्के का राह देख रही है।

आम्भीक—और तुम धक्का देने का कुचक्र विद्यार्थियों को सिखा रहे हो!

सिंह०—विद्यार्थी और कुचक्र! असंभव! यह तो वे ही कर सकते हैं जिनके हाथ में कुछ अधिकार हो, जिनका स्वार्थ समुद्र से भी विशाल और सुमेरु से भी कठोर हो, जो यवनों की मित्रता के लिये स्वयं वाल्हीक तक......

आम्भीक—बस बस दुर्द्धर्ष युवक! बता तेरा अभिप्राय क्या है?

सिंह०—कुछ नहीं।

आम्भीक—नहीं, बताना होगा। मेरी आज्ञा है।

सिंह०—गुरुकुल के केवल आचार्य्य की आज्ञा शिरोधार्य्य होती है; अन्य आज्ञाएँ अवज्ञा के कान से सुनी जाती हैं राजकुमार!

अलका—भाई! इस वन्य निर्झर के समान स्वच्छ और स्वच्छन्द हृदय में कितना बलवान् वेग है! यह अवज्ञा भी स्पृहणीय है। जाने दो।

आम्भीक—चुप रहो अलका, यह ऐसी बात नहीं है जो यों ही उड़ा दी जाये। इसमें कुछ रहस्य है!

(चाणक्य चुपचाप मुस्कराता है ।)

सिंह०—हां हां, रहस्य है ! यवन-आक्रमणकारियों के पुष्कल स्वर्ण से पुलकित हो कर आर्य्यावर्त्त की सुखरजनी की शांति-निद्रा में उत्तरापथ की अर्गला धीरे से खोल देने का रहस्य है । क्यों राजकुमार ! संभवतः तक्षशिलाधीश वाल्हीक तक इसी रहस्य का उद्घाटन करने गये थे ?

आम्भीक—(पैर पटक कर) ओह असह्य ! युवक, तुम बन्दी हो ।

सिंह०—कदापि नहीं; मालव कदापि बन्दी नहीं हो सकता ।

(आम्भीक तलवार खींचता है ।)

चन्द्रगुप्त—(सहसा प्रवेश करके)—ठीक है, प्रत्येक निरपराध आर्य्य स्वतन्त्र है, उसे कोई बन्दी नहीं बना सकता । यह क्या । राजकुमार ! खड्ग को कोष में स्थान नहीं है क्या ?

सिंह०—(व्यङ्ग से) वह तो स्वर्ण से भर गया है !

आम्भीक—सावधान, तुम सब कुचक्र में लिप्त हो ! और इस मालव को तो मेरा अपमान करने का प्रतिफल—मृत्यु-दण्ड—अवश्य भोगना पड़ेगा ।

चन्द्र०—क्यों, क्या वह एक निस्सहाय छात्र तुम्हारे राज्य में शिक्षा पाता है, और तुम एक राजकुमार हो—बस इसी लिये ?

(आम्भीक तलवार चलाता है, चन्द्रगुप्त अपनी तलवार पर उसे रोकता है; आम्भीक की तलवार छूट जाती है । वह निस्सहाय होकर चन्द्रगुप्त के आक्रमण की प्रत्याशा करता है, बीच में अलका आ जाती है ।)

सिंह०—वीर चन्द्रगुप्त, बस। जाओ राजकुमार, यहां कोई कुचक्र नहीं है; अपने कुचक्रों से अपनी रक्षा स्वयं करो।

चाणक्य—राजकुमारी, मैं गुरुकुल का अधिकारी हूं। मैं आज्ञा देता हूं कि तुम क्रोधाभिभूत कुमार को लिवा जाओ। गुरुकुल में शस्त्रों का प्रयोग शिक्षा के लिये होता है, द्वंद्वयुद्ध के लिये नहीं। विश्वास रखना, इस दुर्व्यवहार का समाचार महाराज के कानों तक न पहुँचेगा।

अलका—ऐसा ही हो। चलो भाई !

(क्षुब्ध आम्भीक उसके साथ जाता है।)

चाणक्य—(चन्द्रगुप्त से)—तुम्हारा पाठ समाप्त हो चुका है, मेरी सम्मति है कि तुम शीघ्र तक्षशिला का परित्याग कर दो। और सिंहरण, तुम भी।

चन्द्र०—आर्य्य, हम मागध हैं और यह मालव। अच्छा होता कि यहीं गुरुकुल में हम लोग शस्त्र की परीक्षा भी देते।

चाणक्य—क्या यही मेरी शिक्षा है ? बालकों की-सी चपलता दिखाने का यह स्थल नहीं है। तुम लोगों को समय पर शस्त्र का प्रयोग करना पड़ेगा। परन्तु अकारण रक्तपात नीति विरुद्ध है।

चन्द्र०—आर्य्य ! संसार-भर की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा है कि आत्म-सम्मान के लिये मर-मिटना ही दिव्य जीवन है। सिंहरण मेरा आत्मीय है, मित्र है, उसका मान मेरा ही है।

चाणक्य—देखूंगा कि इस आत्म-सम्मान की भविष्य परीक्षा में तुम कहाँ तक उत्तीर्ण होते हो !

सिंह०—आपके आशीर्वाद से हम लोग अवश्य सफल होंगे।

चाणक्य—आत्मसम्मान की रक्षा के पहले उसे पहचानना होगा। व्यक्तिगत मान के लिये तो तुम प्रस्तुत हो, क्योंकि तुम मालव हो और यह मागध; यही तुम्हारे मान का अवसान है न ? परन्तु आत्मसम्मान इतने ही से सन्तुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूल कर जब तुम आर्य्यावर्त का नाम लोगे तभी वह मिलेगा। क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में आर्य्यावर्त के सब स्वतन्त्र राष्ट्र एक के अनन्तर दूसरे विदेशी विजेता से पद-दलित होंगे। आज जिस व्यंग्य को लेकर इतनी घटना हो गई है उसका अधिकार अब यहीं तक नहीं रहा। भावी गांधार-नरेश आम्भीक के हृदय में यह बात शल्य के समान चुभ गई है। पञ्चनद-नरेश—पर्वतेश्वर के विरोध के कारण, यह क्षुद्र-हृदय आम्भीक यवनों का स्वागत करेगा और आर्य्यावर्त्त का सर्वनाश होगा।

चन्द्र०—गुरुदेव, विश्वास रखिये, यह सब कुछ नहीं होने पावेगा। यह चन्द्रगुप्त आपके चरणों की शपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा करता है, कि यवन यहां कुछ न कर सकेंगे।

चाणक्य—साधु ! वत्स साधु ! तुम्हारी प्रतिज्ञा अचल हो। परन्तु इसके लिये पहले तुम मगध जाकर साधन-सम्पन्न बनो। यहां समय बिताने का प्रयोजन नहीं। मैं भी पञ्चनद-नरेश से

मिलता हुआ मगध आऊँगा क्योंकि मुझे जीविका की खोज है। और सिंहरण, तुम भी सावधान !

सिंह०—आर्य्य, आपका आशीर्वाद ही मेरा रक्षक है।

[चन्द्रगुप्त और चाणक्य का प्रस्थान]

———

दूसरा दृश्य

[पाटलीपुत्र में एक भग्न-कुटीर]

चाणक्य—(प्रवेश कर के)—झोंपड़ी ही तो थी, पिता जी यहीं मुझे गोद में बिठा कर राज-मन्दिर का सुख अनुभव करते थे। ब्राह्मण थे, ऋतु और अमृत जीविका से संतुष्ट थे, पर वे भी न रहे ! कहाँ गये ? कोई नहीं जानता, मुझे भी कोई नहीं पहचानता। यही तो राष्ट्र है, मगध का उन्नतिशील साम्राज्य कहाँ है ? प्रजा की खोज है किसे ! वृद्ध दरिद्र ब्राह्मण कहीं ठोकरें खाता होगा या कहीं मर गया होगा !

[एक चौकीदार का प्रवेश]

चौकीदार—(देखकर)—कौन हो जी तुम ? इधर के घरों को बड़ी देर से क्यों घूर रहे हो ?

चाणक्य—ये घर हैं ! जिन्हें पशु की खोह कहने में भी संकोच होता है। यहाँ कोई स्वर्ण-रत्नों का ढेर नहीं, जो लुटने का भय हो।

चौकीदार—युवक, तुम किसी को खोज रहे हो ?

चाणक्य—हाँ खोज रहा हूँ। यहीं झोंपड़ी में रहने वाले वृद्ध ब्राह्मण चणक को। आज-कल वे कहाँ हैं, बता सकते हो ?

चौकीदार—(सोच कर)—ओहो ! कई वर्ष हुए वह तो राजा की आज्ञा से निर्वासित कर दिया गया है ।—(हँस कर)—वह ब्राह्मण भी बड़ा हठी था । उसने राजा नन्द के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया था । सो भी क्यों, एक मन्त्री शकटार के लिए । उसने सुना कि राजा ने शकटार का वध करवा डाला किसी अपराध पर । ब्राह्मण ने नगर में इस अन्याय के विरुद्ध आतंक फैलाया । सबसे कहने लगा कि यह महापद्म का पुत्र नन्द—महापद्म का हत्याकार नन्द—मगध में राक्षसी राज्य कर रहा है । नागरिको, सावधान !

चाणक्य—अच्छा, तब क्या हुआ ?

चौकी०—वह पकड़ा गया । सो भी कब, जब एक दिन अहेर की यात्रा करते हुए नन्द के लिए राजपथ में मुक्तकंठ से नागरिकों ने अनादर के वाक्य कहे । नन्द ने यह जानकर ब्राह्मण को बुलवाया और समझाया । यह भी कहा कि तेरा मित्र शकटार बन्दी है, मारा नहीं गया । पर वह बड़ा हठी था; उसने न माना, नहीं मा—ना । नन्द ने भी चिढ़कर उसका ब्रह्मस्व बौद्ध विहार में दे दिया और उसे मगध से निर्वासित कर दिया । यही तो उसकी झोंपड़ी है ।

[जाता है ।]

चाणक्य—(उसे बुला कर)—अच्छा एक बात और बताओ ।

चौकी०—क्या पूछते हो जी, तुम इतना जान लो कि नन्द

को ब्राह्मणों से घोर शत्रुता है और वह बौद्ध धर्मानुयायी हो गया है।

चाणक्य—होने दो; परन्तु यह तो बताओ—शकटार का कुटुम्ब कहाँ है ?

चौकी०—कैसे मनुष्य हो ? अरे राज-कोपानल में वे सब जल मरे। इतनी-सी बात के लिये मुझे लौटाया था—छिः !

[जाना चाहता है।]

चाणक्य—हे भगवन् ! एक बात दया करके और बता दो—शकटार की कन्या सुवासिनी कहाँ है ?

चौकी०—(ज़ोर से हँसता है)—युवक ! वह बौद्ध विहार में चली गई थी परन्तु वहाँ भी न रह सकी; पहले तो अभिनय करती फिरती थी, आज-कल कहाँ है, नहीं जानता।

[जाता है।]

चाणक्य—पिता का पता नहीं; झोंपड़ी भी न रह गई। सुवासिनी अभिनेत्री हो गई—संभवतः पेट की ज्वाला से। एक साथ दो-दो कुटुम्ब का सर्वनाश और कुसुमपुर फूलों की सेज में ऊँघ रहा है ! क्या इसी लिये राष्ट्र की शीतल छाया का संगठन मनुष्य ने किया था ? मगध ! मगध ! सावधान ! इतना अत्याचार ! असंभव है। तुझे उलट दूँगा ! नया बनाऊँगा, नहीं तो नाश ही करूँगा !—(ठहर कर)—एक बार चलूँ, नन्द से कहूँ ! नहीं, परन्तु मेरी भूमि, मेरी वृत्ति, वही मिल जाय, मैं शास्त्र-व्यवसायी न रहूंगा, मैं कृषक बनूँगा। मुझे राष्ट्र की भलाई-

बुराई से क्या ! तो चलूँ।—(देख कर) यह एक लकड़ी का स्तम्भ अभी उसी झोंपड़ी का खड़ा है, इसके साथ मेरे बाल्य काल की सहस्रों भाँवरियां लिपटी हुई हैं, जिन पर मेरी धवल मधुर हँसी का आवरण चढ़ा रहता था ! शैशव की स्मृति ! विलीन हो जा !

(खंभा खींच कर गिराता चला जाता है ।)

तीसरा दृश्य

[मगध में नन्द की राज-सभा, राक्षस और सभासदों के साथ नन्द]

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी—जय हो देव, मगध से शिक्षा के लिये गये हुए तक्षशिला के स्नातक आये हैं ।

नन्द—लिवा लाओ।

[दौवारिक का प्रस्थान; चन्द्रगुप्त के साथ कई स्नातकों का प्रवेश—]

स्नातक—राजाधिराज की जय हो !

नन्द—स्वागत ।—अमात्य, वररुचि अभी नहीं आये, देखो तो ।

(प्रतिहारी का प्रस्थान और वररुचि के साथ प्रवेश)

वर०—जय हो देव, मैं स्वयं आ रहा था ।

नन्द—तक्षशिला से लौटे हुए स्नातकों की परीक्षा लीजिये ।

वर०—राजाधिराज, जिस गुरुकुल में मैं स्वयं परीक्षा देकर स्नातक हुआ हूं उस के प्रमाण की भी पुनः परीक्षा, अपने गुरुजनों के प्रति अपमान करना है।

नन्द—किन्तु राजकोष का रुपया व्यर्थ ही स्नातकों को भेजने में लगता है या इस का सदुपयोग होता है, इसका निर्णय कैसे हो ? मैं तो व्यर्थ ही समझूँगा।

वर०—ऐसा तो नहीं होता महाराज !

राक्षस—केवल सद्धर्म की शिक्षा ही मनुष्यों के लिये पर्याप्त है और वह तो मगध में ही मिल सकती है।

[चाणक्य का सहसा प्रवेश, त्रस्त दौवारिक पीछे-पीछे आता है।]

चाणक्य—परन्तु बौद्धधर्म की शिक्षा मानव व्यवहार के लिये पूर्ण नहीं हो सकती। भले ही वह संघ-विहार में रहने वालों के लिये उपयुक्त हो।

नन्द—तुम अनधिकार चर्चा करने वाले कौन हो जी ?

चाणक्य—तक्षशिला से लौटा हुआ एक स्नातक ब्राह्मण।

नन्द—ब्राह्मण ! ब्राह्मण !! जिधर देखो कृत्या के समान इन की शक्ति-ज्वाला धधक रही है।

चाणक्य—नहीं महाराज ! ज्वाला कहाँ ? भस्मावगुण्ठित अङ्गारे रह गये हैं।

राक्षस—तब भी इतना ताप !

चाणक्य—वह तो रहेगा ही ! जिस दिन उस का अन्त होगा उसी दिन आर्य्यावर्त्त का ध्वंस होगा। यदि अमात्य ने ब्राह्मण-

नाश करने का विचार किया हो तो जन्म-भूमि की भलाई के लिये उसका त्याग कर दें। क्योंकि राष्ट्र का शुभ-चिंतन केवल कर्म्म वादी संयमी ब्राह्मण ही कर सकते हैं। एक जीव की हत्या से डरने वाले तपस्वी बौद्ध, सिर पर मँडराने वाली विपत्तियों से, रक्त समुद्र की आंधियों से, आर्य्यावर्त्त की रक्षा करने में असमर्थ प्रमाणित होंगे।

नन्द—ब्राह्मण ! तुम बोलना नहीं जानते हो तो चुप रहना सीखो।

चाणक्य—महाराज, उसे सीखने के लिये मैं तक्षशिला गया था और मगध का सिर ऊँचा करके उसी गुरुकुल में मैंने अध्यापन का कार्य भी किया है। इसलिये मेरा हृदय यह नहीं मान सकता कि मैं मूर्ख हूं।

नन्द—तुम चुप रहो।

चाणक्य—एक बात कह कर महाराज !

राक्षस—क्या ?

चाणक्य—यवनों की विकट वाहिनी निषध पर्वत माला तक पहुँच गई है। तक्षशिलाधीश की भी उस में अभिसन्धि है। संभवतः समस्त आर्य्यावर्त्त पादाक्रान्त होगा। उत्तरापथ में बहुत से छोटे-छोटे गणतन्त्र हैं, वे उस सम्मिलित पारसीक यवन बल को रोकने में असमर्थ होंगे। अकेले पर्वतेश्वर ने साहस किया है, इसलिए मगध को पर्वतेश्वर की सहायता करनी चाहिये।

(नन्द हँसता है।)

राक्षस—ब्राह्मण चाणक्य ! परीक्षा देकर ही कोई साम्राज्य नीति समझ लेने का अधिकारी नहीं हो जाता ।

चाणक्य—सच है बौद्ध अमात्य, परन्तु यवन आक्रमणकारी बौद्ध और ब्राह्मण का भेद न रक्खेंगे ।

नन्द—वाचाल ब्राह्मण ! तुम अभी चले जाओ, नहीं तो प्रतिहार तुम्हें धक्के देकर निकाल देंगे ।

चाणक्य—राजाधिराज ! मैं जानता हूं कि प्रमाद में मनुष्य कठोर सत्य का भी अनुभव नहीं करता, इसी लिये मैंने प्रार्थना नहीं की—अपने अपहृत ब्रह्मस्व के लिये मैं ने भिक्षा नहीं माँगी। क्यों ? जानता था कि वह मुझे ब्राह्मण होने के कारण न मिलेगी, परन्तु जब राष्ट्र के लिये.........

राक्षस—चुप रहो तुम चणक के पुत्र हो न, तुम्हारे पिता भी ऐसे ही हठी थे !

नन्द—क्या उसी विद्रोही ब्राह्मण की सन्तान ! निकालो इसे अभी यहाँ से !

(प्रतिहारी आगे बढ़ता है ! चन्द्रगुप्त सामने आकर उसे रोकता है ।)

चन्द्र०—सम्राट्, मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरे सामने गुरुदेव का अपमान न किया जाय ! मैं भी उत्तरापथ से आ रहा हूं। आर्य्य चाणक्य ने जो कुछ कहा है वह साम्राज्य के हित की बात है। उस पर विचार किया जाय ।

नन्द—कौन ? सेनापति मौर्य्य का कुमार चन्द्रगुप्त !

चन्द्र०—हाँ देव, मैं युद्ध-नीति सीखने के लिये ही तक्षशिला भेजा गया था। मैंने अपनी आँखों गान्धार का उपद्रव देखा है, मुझे गुरुदेव के मत में पूर्ण विश्वास है। यह आगन्तुक आपत्ति पञ्चनद प्रवेश तक ही न रह जायगी।

नन्द—अबोध युवक, तो क्या इसी लिये अपमानित होने पर भी मैं पर्वतेश्वर की सहायता करूं ! असम्भव है। तुम राजाज्ञाओं में बाधा न देकर शिष्टता सीखो। प्रतिहारी निकालो इस ब्राह्मण को ! यह बड़ा ही कुचक्री मालूम पड़ता है।

चन्द्र०—राजाधिराज, ऐसा करके आप एक भारी अन्याय करेंगे और मगध के शुभचिंतकों को शत्रु बनावेंगे।

राजकुमारी—पिताजी, चन्द्रगुप्त पर ही दया कीजिये। एक बात उसकी भी मान लीजिये।

नन्द—चुप रहो, ऐसे उद्दंड को मैं कभी नहीं क्षमा करता। और सुनो चन्द्रगुप्त, तुम भी, यदि इच्छा हो तो, इसी ब्राह्मण के साथ जा सकते हो, अब कभी मगध में मुंह न दिखाना !

(प्रतिहारी दोनों को निकालना चाहता है, चाणक्य रुक कर कहता है—)

सावधान नन्द ! तुम्हारी धर्मान्धता से प्रेरित राजनीति आँधी की तरह चलेगी, उसमें नन्द-वंश समूल उखड़ेगा। समय आ गया है कि शूद्र राजसिंहासन से हटाये जायँ और सच्चे क्षत्रिय मूर्धाभिषिक्त हों। नियति-सुन्दरी के भावों में बल पड़ने लगा है।

नन्द—यह समझ कर कि ब्राह्मण अवध्य है, तू मुझे भय दिखलाता है ! प्रतिहारी, इसकी शिखा पकड़ कर इसे बाहर करो !

(प्रतिहारी चाणक्य की शिखा पकड़ कर घसीटता है,
वह निशंक दृढ़ता से कहता है—)

चाणक्य—खींच ले ब्राह्मण की शिखा! शूद्र के अन्न से पले हुए कुत्ते! खींच ले! परन्तु यह शिखा नन्दकुल की काल-सर्पिणी है, यह तब तक न बंधन में होगी जब तक नंद-कुल निःशेष न होगा।

नन्द—इसे बन्दी करो।

(चाणक्य बन्दी किया जाता है।)

———

चौथा दृश्य

[मगध का बन्दी गृह]

चाणक्य—समीर की गति भी अवरुद्ध है, शरीर का फिर क्या कहना! परन्तु मन में इतने संकल्प और विकल्प! एक बार निकलने पाता तो दिखा देता कि इन दुर्बल हाथों में साम्राज्य उलटने की शक्ति है और ब्राह्मण के कोमल हृदय में कर्त्तव्य के लिए प्रलय की आंधी चला देने की भी कठोरता है। जकड़ी हुई लौहशृंखले! एक बार तो फूलों की माला बन जा और मैं मदोन्मत्त विलासी के समान तेरी सुन्दरता को भंग कर दूं! क्या रोने लगूँ? इस निष्ठुर यन्त्रणा की कठोरता से बिलबिला कर दया की भिक्षा माँगूँ! माँगूँ कि मुझे भोजन के लिए एक मुट्ठी चने जो देते हो, न दो, एक बार स्वतन्त्र कर दो! नहीं, चाणक्य! ऐसा न करना! नहीं तो तू भी साधारण सी ठोकर खा कर चूर-चूर हो

जाने वाली एक वस्तु रह जायगा। तब मैं आज से प्रण करता हूँ कि दया किसी से न माँगूँगा और अधिकार तथा अवसर मिलने पर किसी पर न करूँगा। (ऊपर देख कर) क्या कभी नहीं? हाँ हाँ कभी किसी पर नहीं। मैं प्रलयवन्या के समान अबाधगति और कर्त्तव्य में इन्द्र के वज्र के समान भयानक बनूँगा।

(किवाड़ खुलता है, वररुचि और राक्षस का प्रवेश—)

राक्षस—स्नातक! अच्छे तो हो?

चाणक्य—बुरे कब थे बौद्ध अमात्य!

राक्षस—आज हम लोग एक काम से आये हैं। आशा है कि तुम अपनी हठवादिता से मेरा और अपना दोनों का अपकार न करोगे।

वररुचि—हाँ चाणक्य! अमात्य का कहना मान लो।

चाणक्य—भिक्षोपजीवी ब्राह्मण! क्या बौद्धों का संग करते-करते तुम्हें अपनी गरिमा का संपूर्ण विस्मरण हो गया। चाटुकारों के समान हाँ में हाँ मिलाकर जीवन की कठिनाइयों से बच कर मुझे भी कुत्ते का पाठ पढ़ाना चाहते हो! भूलो मत, यदि राक्षस देवता हो जाय तो भी मैं उसका विरोध करने के लिए ब्राह्मण से दैत्य बनूँगा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह भी उसका कपट रूप होगा।

वररुचि—ब्राह्मण हो भाई! त्याग और क्षमा के प्रमाण, तपोनिधि ब्राह्मण हो! इतना—

चाणक्य—त्याग और क्षमा, तप और विद्या, तेज और

सम्मान के लिए हैं—लोहे और सोने के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राह्मण नहीं बने हैं। हमारी ही दी हुई विभूति से हमीं को अपमानित किया जाय, ऐसा नहीं हो सकता। कात्यायन! अब केवल पाणिनि से काम न चलेगा। अर्थशास्त्र और दण्ड-नीति की आवश्यकता है।

वररुचि—मैं वार्त्तिक लिख रहा हूँ चाणक्य! उसी के लिए तुम्हें सहकारी बनाना चाहता हूँ। तुम इस बन्दीगृह से निकलो।

चाणक्य—मैं लेखक नहीं हूँ कात्यायन! शास्त्र प्रणेता हूँ, व्यवस्थाक हूँ।

राक्षस—अच्छा मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम विवाद न बढ़ा कर स्पष्ट उत्तर दो। तुम तक्षशिला में मगध के गुप्त प्रणिधि बन कर जाना चाहते हो या मृत्यु चाहते हो? तुम्हीं पर विश्वास करके क्यों भेजना चाहता हूँ, यह तुम्हारी स्वीकृति मिलने पर बतलाऊँगा।

चाणक्य—जाना तो चाहता हूँ तक्षशिला, पर तुम्हारी सेवा के लिए नहीं। और सुनो, पर्वतेश्वर का नाश करने के लिए तो कदापि नहीं।

राक्षस—यथेष्ट है, और कहने की आवश्यकता नहीं।

वररुचि—विष्णुगुप्त! मेरा वार्त्तिक अधूरा रह जायगा। मान जाओ। तुमको पाणिनि के कुछ प्रयोगों का पता भी लगाना होगा जो उस शालातुरीय वैयाकरण ने लिखे हैं। फिर से एक बार तक्षशिला जाने पर ही उनका—

चाणक्य—मेरे पास पाणिनि में सिर खपाने का समय नहीं। भाषा ठीक करने के पहले मैं मनुष्यों को ठीक करना चाहता हूँ, समझे!

वररुचि—जिसने 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' सूत्र लिखा है वह केवल वैयाकरण ही नहीं, दार्शनिक भी था। उसकी अवहेला!

चाणक्य—यह मेरी समझ में नहीं आता, मैं कुत्ते, साधारण युवक और इन्द्र को भी एक सूत्र में नहीं बाँध सकता। कुत्ता कुत्ता ही रहेगा, इन्द्र इन्द्र ही। सुनो वररुचि! मैं कुत्ते को कुत्ता ही बनाना चाहता हूँ। नीचों के हाथ में इन्द्र का अधिकार चले जाने से जो सुख होता है उसे मैं भोग रहा हूँ! तुम जाओ।

वररुचि—क्या मुक्ति भी नहीं चाहते?

चाणक्य—तुम लोगों के हाथ से वह भी नहीं।

राक्षस—अच्छा तो फिर तुम्हें अंध कूप में जाना होगा।

(चन्द्रगुप्त का रक्तपूर्ण खड्ग लिए सहसा प्रवेश—चाणक्य का बंधन काटता है, राक्षस प्रहरियों को बुलाना चाहता है।)

चन्द्रगुप्त—चुप रहो अमात्य! शवों में बोलने की शक्ति नहीं, तुम्हारे प्रहरी जीवित नहीं रहे!

चाणक्य—मेरे शिष्य! वत्स चन्द्रगुप्त!

चन्द्रगुप्त—चलिए गुरुदेव!—(खड्ग उठा कर राक्षस से)—यदि तुमने कुछ भी कोलाहल किया तो......

(राक्षस बैठ जाता है, वररुचि गिर पड़ता है। चन्द्रगुप्त चाणक्य को लिए निकलता हुआ किवाड़ बंद कर देता है।)

पांचवा दृश्य

[पर्वतेश्वर की राजसभा]

पर्वतेश्वर—आर्य्य चाणक्य ! आपकी बातें ठीक-ठीक नहीं समझ में आतीं।

चाणक्य—कैसे आवेंगी, मेरे पास केवल बात ही है न, अभी तक कुछ कर दिखाने में असमर्थ हूं।

पर्वतेश्वर—परन्तु इस समय मुझे यवनों से युद्ध करना है, मैं अपना एक भी सैनिक मगध नहीं भेज सकता।

चाणक्य—निरुपाय हूं। लौट जाऊँगा। नहीं तो मगध की लक्षाधिक सेना आगामी यवन युद्ध में पौरव पर्वतेश्वर की पताका के नीचे युद्ध करती। वही मगध, जिसने सहायता मांगने पर पंचनद का तिरस्कार किया था।

पर्वतेश्वर—हाँ, तो इस मगध-विद्रोह का केन्द्र कौन होगा ? नन्द के विरुद्ध कौन खड़ा होता है ?

चाणक्य—मौर्य्य सेनानी का पुत्र वीर चन्द्रगुप्त; जो मेरे साथ यहाँ आया है।

पर्वतेश्वर—पिप्पली कानन के मौर्य्य भी तो वैसे ही वृषल हैं, उनको राज्य सिंहासन दीजियेगा ?

चाणक्य—आर्य्य क्रियाओं का लोप हो जाने से इन लोगों को (वृषलत्त्व) मिला, वस्तुतः ये क्षत्रिय हैं। बौद्धों के प्रभाव में आने से इनके श्रौत संस्कार छूट गये हैं अवश्य, परन्तु इनके

क्षत्रिय होने में कोई संदेह नहीं। और महाराज, धर्म्म के नियामक ब्राह्मण हैं, मुझे पात्र देख कर उसका संस्कार करने का अधिकार है। ब्रह्मत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव है। वह अपनी रक्षा के लिये, पुष्टि के लिये और सेवा के लिये इतर वर्णों का संगठन कर लेगा। राजन्य संस्कृति से पूर्ण मनुष्य को मूर्धाभिषिक्त बनाने में दोष ही क्या है ?

पर्वतेश्वर—(हँस कर)—यह आपका सुविचार नहीं है ब्रह्मन् !

चाणक्य—वशिष्ठ का ब्राह्मणत्व जब पीड़ित हुआ था, तब पह्लव, दरद, काम्बोज आदि क्षत्रिय बने थे। राजन्, यह कोई नई बात नहीं है।

पर्वतेश्वर—वह समर्थ ऋषियों की बात है।

चाणक्य—भविष्य इसका विचार करता है कि ऋषि किन्हें कहते हैं। क्षत्रियाभिमानी पौरव ! तुम इसके निर्णायक नहीं हो सकते।

पर्वतेश्वर—शूद्र-शासित राष्ट्र में रहने वाले ब्राह्मण के मुख से यह बात शोभा नहीं देती।

चाणक्य—तभी तो ब्राह्मण मगध को क्षत्रिय-शासन में ले आना चाहता है। पौरव ! जिसके लिये कहा गया है कि क्षत्रिय के शस्त्र धारण करने पर आर्त्तवाणी नहीं सुनाई पड़नी चाहिये, मौर्य्य चन्द्रगुप्त वैसा ही क्षत्रिय दिखाई देगा !

पर्वतेश्वर—कल्पना है।

चाणक्य—प्रत्यक्ष होगी। और स्मरण रखना, आसन्न यवन युद्ध में, शौर्य्य-गर्व से तुम पराभूत होगे। यवनों के द्वारा समग्र आर्यावर्त्त पदाक्रान्त होगा। उस समय तुम मुझे स्मरण करोगे।

पर्वतेश्वर—केवल अभिशाप-अस्त्र लेकर ही तो ब्राह्मण लड़ते हैं। मैं इससे नहीं डरता। परन्तु डराने वाले ब्राह्मण, तुम मेरी सीमा के बाहर हो जाओ!

चाणक्य—(ऊपर देखकर)—रे पद-दलित ब्राह्मणत्व! देख, शूद्र ने निगड़-बद्ध किया, क्षत्रिय निर्वासित करता है, तब जल—एक बार अपनी ज्वाला से जल! उसकी चिनगारी से तेरे सेवक शूद्र और रक्षक क्षत्रिय उत्पन्न होंगे। जाता हूँ पौरव!

(प्रस्थान)

———

द्वितीय अङ्क

पहला दृश्य

[स्कंधावार में युद्ध-परिषद्]

देववल—परिषद् के सम्मुख मैं यह ज्ञप्ति उपस्थित करता हूं कि यवन युद्ध के लिये जो संधि मालव-क्षुद्रकों से हुई है, उसे सफल वनाने के लिये आवश्यक है कि दोनों गणों की एक सम्मिलित सेना वनाई जाय और उसके सेनापति क्षुद्रकों के मनोनीत सेनापति मागध चन्द्रगुप्त ही हों, उन्हीं की आज्ञा से सैन्य-संचालन हो।

(सिंहरण का प्रवेश—)

सव—कुमार सिंहरण की जय !

नागरदत्त—मगध एक राज्य है। लिच्छिवि और वृजि गणतंत्र को कुचलने वाले मगध का निवासी हमारी सेना का संचालन करे, यह अन्याय है। मैं इसका विरोध करता हूं।

सिंह०—मैं मालव सेना का वलाधिकृत हूं। मुझे सेना का अधिकार परिषद् ने प्रदान किया है और साथ ही मैं सन्धि-विग्रहिक का कार्य भी करता हूं! पंचनद की परिस्थिति मैं स्वयं देख आया हूं और मागध चन्द्रगुप्त को भी भली भांति जानता हूं। मैं चन्द्रगुप्त के आदेशानुसार युद्ध चलाने के लिये सहमत हूँ। और भी मेरी एक प्रार्थना है—उत्तरापथ के विशिष्ट राजनीतिज्ञ आर्य्य चाणक्य के गम्भीर राजनैतिक विचार सुनने पर आप लोग अपना कर्त्तव्य निश्चित करें।

गणमुख्य—आर्य्य चाणक्य व्यासपीठ पर आवें।

चाणक्य—(व्यासपीठ से)—उत्तरापथ के प्रमुख गणतन्त्र मालवराष्ट्र की परिषद् का मैं अनुगृहीत हूँ कि ऐसे गम्भीर अवसर पर मुझे कुछ कहने के लिये उसने आमन्त्रित किया। मैं वह आकस्मिक रहस्य जानता हूं, जिससे प्रेरित हो कर उसने चन्द्रगुप्त को अपना सेनापति बनाया। एक रात्रि को चैत्य के अधिदेवता की आज्ञा हुई—'आज नगर के उत्तरीय सिंहद्वार पर प्रभात में सब से पहले जो आगन्तुक हो वही आगामी युद्ध का सेनापति बनाया जाय, अन्यथा क्षुद्रकों के अनिष्ट की सम्भावना है।' संयोग से उस प्रभात, मागध गुल्म का सेनापति चन्द्रगुप्त अपनी प्रत्यावर्त्तन करने वाली सेना को क्षुद्रक राष्ट्र से निकल जाने की आज्ञा लेने वहाँ पहुंचा और अनिच्छापूर्वक सेनापतित्व ग्रहण करने के लिये बाध्य किया गया।

नाग०—अच्छा! यह एक आकस्मिक घटना थी?

चाणक्य—हाँ, किन्तु वहाँ की आकस्मिक घटना यहाँ के इस आसन्न विपत्ति काल में निर्णय के रूप में घटनी चाहिए। एक राज्य का प्रश्न यहाँ नहीं, क्योंकि लिच्छिवि वृजियों का अपकार करने वाला मगध का एक राज्य, शीघ्र ही गण में परिवर्त्तित होने वाला है। युद्ध काल में एक नायक की आज्ञा माननी पड़ती है। वहाँ शलाका ग्रहण करके शस्त्र प्रहार करना असम्भव है। अतएव सेना का एक नायक तो होना ही चाहिये और यहाँ की परिस्थिति में चन्द्रगुप्त से बढ़ कर इस कार्य के

लिये दूसरा व्यक्ति न होगा। वितस्ता-प्रदेश के अधीश्वर पर्वतेश्वर के यवनों से सन्धि करने पर भी चन्द्रगुप्त ही के उद्योग का यह फल है कि पर्वतेश्वर की सेना यवन-सहायता को न आवेगी। उसी के प्रयत्न से यवन-सेना में विद्रोह भी हो गया है, जिस से उनका आगे बढ़ना असंभव हो गया है। परन्तु सिकन्दर की कूट-नीति प्रत्यावर्तन में भी विजय चाहती है। वह विद्रोही सेना को स्थल-मार्ग से लौटने की आज्ञा दे कर नौ-बल के द्वारा स्वयं सिंधु-सङ्गम तक के प्रदेश विजय करना चाहता है, उस में मालवों का नाश निश्चित है। अतएव सेनापतित्व के लिए आप लोग चन्द्रगुप्त की ही शरण लीजिये।

नाग०—ऐसा नहीं हो सकता।

चाणक्य—प्रबल प्रतिरोध करने के लिये दोनों सैन्यों में एकाधिपत्य होना आवश्यक है। साथ ही, क्षुद्रकों की सन्धि की मर्यादा भी रखनी चाहिये। प्रश्न शासन का नहीं, युद्ध का है। युद्ध में सम्मिलित होने वाले वीरों को एकनिष्ठ होना ही लाभदायक है। फिर तो मालव और क्षुद्रक दोनों ही स्वतन्त्र संघ हैं और रहेंगे। सम्भवतः इस में प्राच्यों का एक गणराष्ट्र आगामी दिनों में और भी आ मिलेगा।

नाग०—समझ गया, चन्द्रगुप्त को ही सम्मिलित सेना का सेनापति बनाना श्रेयस्कर होगा।

गणमुख—बलाधिकृत-पद के लिए चन्द्रगुप्त को वरण करने की आज्ञा परिषद् देती है।

(स्त्रियों का मङ्गलाचार करने की सामग्री लेकर प्रवेश; पट्टबन्ध होना और सब का एक साथ जयघोष।)

———

दूसरा दृश्य

[रावी-तट के उत्सव-शिविर का एक अंश। पर्वतेश्वर अकेले टहलते हुए]

पर्व०—आह! कैसा अपमान! जिस पर्वतेश्वर ने उत्तरापथ में अनेक प्रबल शत्रुओं के रहते भी विरोधों को कुचल कर गर्व से सिर ऊँचा कर रक्खा था, जिसने दुर्दान्त सिकन्दर के सामने मरण को तुच्छ समझते हुए, वक्ष ऊँचा करके भाग्य से हँसी-ठट्ठा किया था; उसी का यह तिरस्कार!—सो भी एक स्त्री के द्वारा! और सिकन्दर के संकेत से! प्रतिशोध! रक्तपिशाची प्रतिहिंसा अपने दांतों से नसों को नोच रही है! मरूँ या मार डालूँ? मारना तो असम्भव है! सिंहरण और अलका, वर-वधू वेश में हैं, मालवों के चुने हुए वीरों से वे घिरे हैं। सिकन्दर उनकी प्रशंसा और आदर में लगा है। इस समय सिंहरण पर हाथ उठाना असफलता के पैरों-तले गिरना है। तो फिर जीकर क्या करूँ?

(छुरी निकाल कर आत्महत्या करना चाहता है, चाणक्य आ कर हाथ पकड़ लेता है।)

पर्वतेश्वर—कौन?

चाणक्य—ब्राह्मण चाणक्य।

पर्व०—इस मेरे अन्तिम समय में भी क्या कुछ दान चाहते हो ?

चाणक्य—हाँ !

पर्व०—मैंने अपना राज्य दिया, अब हटो।

चाणक्य—यह तो तुमने दे दिया, परन्तु इसे मैंने तुमसे माँगा न था पौरव !

पर्व०—फिर क्या चाहते हो ?

चाणक्य—एक प्रश्न का उत्तर।

पर्व०—तुम अपनी बात मुझे स्मरण दिलाने आये हो। तो ठीक है। ब्राह्मण ! तुम्हारी बात सच हुई। यवनों ने आर्य्यावर्त्त को पद-दलित कर लिया। मैं गर्व में भूला था, तुम्हारी बात न मानी। अब उसी का प्रायश्चित करने जाता हूँ ! छोड़ दो।

चाणक्य—पौरव ! शाँत हो। मैं एक दूसरी बात पूछता हूँ, वृषल चन्द्रगुप्त क्षत्रिय है कि नहीं; अथवा उसे मूर्धाभिषिक्त करने में ब्राह्मण से भूल हुई ?

पर्व०—आह, ब्राह्मण ! व्यंग्य न करो ! चन्द्रगुप्त के क्षत्रिय होने का प्रमाण यही विराट् आयोजन है। आर्य्य चाणक्य ! मैं क्षमता रखते हुए जिस काम को न कर सका, वह कार्य्य निस्सहाय चन्द्रगुप्त ने किया। आर्य्यावर्त्त से यवनों को निकल जाने का संकेत उसके प्रचुर बल का द्योतक है। मैं विश्वस्त हृदय से कहता हूं कि चन्द्रगुप्त आर्य्यावर्त का एकच्छत्र सम्राट होने के

उपयुक्त है। अब मुझे छोड़......

चाणक्य—पौरव ! ब्राह्मण राज्य करना नहीं जानता, करना भी नहीं चाहता, हां वह राजाओं का नियमन जानता है, राजा बनाना जानता है। इसलिये तुम्हें अभी राज्य करना होगा, और करना होगा वह कार्य्य—जिसमें भारतीयों का गौरव हो और तुम्हारे क्षात्रधर्म्म का पालन हो।

पर्व०—(छुरी फेंक कर)—वह क्या काम है ?

चाणक्य—जिन यवनों ने तुमको लाञ्छित और अपमानित किया है, उनसे प्रतिशोध !

पर्व०—असम्भव है !

चाणक्य—(हँस कर)—मनुष्य अपनी दुर्बलता से भली-भाँति परिचित रहता है। परन्तु उसे अपने बल से भी अवगत होना चाहिये—असम्भव कह कर किसी काम को करने के पहले कर्मक्षेत्र में काँप कर लड़खड़ाओ मत पौरव ! तुम क्या हो—विचार कर देखो तो ! सिकन्दर ने जो क्षत्रप नियुक्त किया है, जिन संधियों को वह प्रगतिशील रखना चाहता है, वे सब क्या हैं ! अपने लूटपाट को वह साम्राज्य के रूप में देखना चाहता है ! चाणक्य जीते जी यह नहीं होने देगा ! राज्य करो।

पर्व०—परन्तु आर्य्य, मैंने राज्य दान कर दिया है।

चाणक्य—पौरव, तामस त्याग से सात्विक ग्रहण उत्तम है। वह दान न था; उसमें कोई सत्य नहीं। तुम उसे ग्रहण करो।

पर्व०—तो क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—पीछे बतलाऊँगा। इस समय मुझे केवल यही कहना है कि सिंहरण को अपना भाई समझो और वीरतापूर्वक अपने राज्य पर शासन करो।

(वृद्ध गांधारराज का सहसा प्रवेश)

वृद्ध—अलका कहाँ है, अलका ?

पर्व०—कौन हो तुम वृद्ध ?

चाणक्य—मैं इन्हें जानता हूं। वृद्ध गाँधार नरेश !

पर्व०—आर्य्य, मैं पर्वतेश्वर प्रणाम करता हूं।

वृद्ध—मैं प्रणाम करने योग्य नहीं; पौरव! मेरी सन्तान से देश का बड़ा अनिष्ट हुआ है। आम्भीक ने लज्जा की कुहेलिका में मुझे छिपा दिया है। इस देशद्रोही के प्राण केवल अलका को देखने के लिए बचे हैं; उसी से कुछ आशा थी। जिस को मोल लेने में लोभ असमर्थ था, उसी अलका को देखना चाहता हूं और प्राण दे देना चाहता हूं!—(हाँफता है।)

चाणक्य—क्षत्रिय! तुम्हारे पाप और पुण्य दोनों जीवित हैं। प्रसन्न हो जाओ।

(चाणक्य वृद्ध आम्भीक को लिवा जाता है।)

तीसरा दृश्य

[कुसुमपुर के निकट गंगा तट; चाणक्य अकेला।]

चाणक्य—वह सामने कुसुमपुर है, जहाँ मेरे जीवन का प्रभात हुआ था! मेरे उस सरल हृदय में उत्कट इच्छा थी कि

कोई भी सुन्दर मन मेरा साथी हो। प्रत्येक नवीन परिचय में उत्सुकता थी और उसके लिये मन में सर्वस्व लुटा देने की सन्नद्धता थी। परन्तु संसार—कठोर संसार—ने सिखा दिया कि तुम्हें परखना होगा। समझदारी आने पर यौवन चला जाता है, जब तक माला गूँथी जाती है तब तक फूल कुम्हला जाते हैं। जिससे मिलने की तैयारी की इतनी धूमधाम, सजावट, बनावट होती है, उसके आने तक मनुष्य अपने हृदय को सुन्दर और उपयुक्त नहीं बना सकता। मनुष्य की चंचल स्थिति तब तक उस श्याम कोमल हृदय को मरुभूमि बना देती है। यही तो विषमता है। मैं—अविश्वास, कूटचक्र और छलनाओं का कंकाल, कठोरताओं का केन्द्र! आह! तो इस विश्व में मेरा कोई सुहृद नहीं? है, मेरा संकल्प; अब मेरा आत्माभिमान ही मेरा मित्र है। तृण-शय्या पर आधे पेट खाकर सो रहने वाले सिर पर दिव्य यश का स्वर्ण मुकुट! और सामने सफलता का स्मृति-सौध। (आकाश की ओर देख कर) वह, इन लाल बादलों में दिग्दाह का धूम मिल रहा है। भीषण रव से सब जैसे चाणक्य का नाम चिल्ला रहे हैं। क्या इसमें भी कोई सौन्दर्य है! क्यों नहीं, प्रत्येक परिवर्तन सौन्दर्य-संदर्भ का पृष्ठ है! (देखकर) हैं! यह कौन भूमिसंधि तोड़ कर सर्प के समान निकल रहा है! छिप कर देखूँ—

(छिप जाता है। एक द्धह की मिट्टी गिरती है, उसमें से शकटार वन-मानुस के समान निकलता है।)

शक०—(चारों ओर देख कर आंखें बन्द कर लेता है, फिर खोलता

हुआ)—आखें नहीं सह सकतीं, इन्हीं प्रकाश-किरणों के लिये तड़प रही थीं ! ओह ! तीखी हैं ! तो क्या मैं जीवित हूं ! कितने दिन हुए, कितने महीने, कितने बरस ? नहीं स्मरण है। अन्ध-कूप की प्रधानता सर्वोपरि थी। सात लड़के भूख से तड़प कर मरे। कृतज्ञ हूं उस अन्धकार का, जिसने उन विवर्ण मुखों को न देखने दिया ! केवल उनके दम तोड़ने का क्षीण शब्द सुन सका। ओह ! फिर भी जीवित रहा—सत्तू और नमक पानी से मिला कर, अपनी नसों में से रक्त पी कर जीवित रहा। प्रतिहिंसा के लिए ! पर अब शेष है, दम घुट रहा है, ओह ! (गिर पड़ता है)।

(चाणक्य पास आकर कपड़ा निचोड़ कर मुँह में जल डाल सचेत करता है।)

चाणक्य—आह ! तुम कोई दुःखी मनुष्य हो ! घबराओ मत, मैं तुम्हारी सहायता के लिये प्रस्तुत हूं।

शक०—(ऊपर देखकर) तुम सहायता करोगे ? आश्चर्य ! मनुष्य मनुष्य की सहायता करेगा, वह उसे हिंस्र पशु के समान नोच न डालेगा ! हाँ, यह दूसरी बात है कि वह जोंक की तरह बिना कष्ट दिये रक्त चूसे। उसका कोई स्वार्थ हो। तुम भूखे भेड़िये ! मुंह मत दिखलाओ !

चाणक्य—अभागे मनुष्य ! सबसे चौंक कर अलग न उछल ! अविश्वास की चिनगारी पैरों के नीचे से हटा। तुझ जैसे दुःखी बहुत से पड़े हैं। यदि सहायता नहीं तो परस्पर का स्वार्थ ही सही।

शक०—दुःख ! दुःख का नाम सुना होगा, या कल्पित आशंका से तुम उसका नाम लेकर चिल्ला उठते होगे। देखा है कभी—सात सात गोद के लालों को भूख से तड़प कर मरते ? अन्धकार की घनी चादर में, बरसों भूगर्भ की जीवित समाधि में एक दूसरे को अपना आहार देकर स्वेच्छा से मरते—देखा है ?—प्रतिहिंसा की स्मृति को नोचते हुये, ठोकरें मार कर जागते जागते, प्राण-विसर्जन करते ? देखा है कभी यह कष्ट—उन सबों ने अपना आहार मुझे दिया और पिता होकर भी मैं पत्थर-सा जीवित रहा। उनका आहार खा डाला—उन्हें मरने दिया। जानते हो क्यों ? वे सुकुमार थे, वे सुख की गोद में पले थे, वे नहीं सहन कर सकते थे, अतः सब मर गये। मैं बच रहा प्रतिशोध के लिये ! दानवी प्रतिहिंसा के लिये ; ओह ! उस अत्याचारी नर राक्षस की अँतड़ियों में से खींचकर एकबार रक्तपात का फुहारा छोड़ता !—इस पृथ्वी को उसी से रंगा देखता !

चाणक्य—ठहरो ! सावधान ! (शकटार को उठाता है।)

शक०—सावधान हों वे जो दुर्बलों पर अत्याचार करते हैं ! मैं पीड़ित, पद-दलित, सब तरह लुटा हुआ, मुझे सावधान रहने की आवश्यकता क्या ? जिसने पुत्रों की हड्डियों से सुरंग खोदा है, नखों से मिट्टी हटाई है, उसके लिये सावधान रहने की आवश्यकता नहीं। मेरी वेदना अपने अन्तिम अस्त्रों से सुसज्जित है।

चाणक्य—तो भी तुमको प्रतिशोध लेना है ! हम लोग एक ही पथ के पथिक हैं। घबराओ मत। क्या तुम्हारा और कोई

भी इस संसार में जीवित नहीं ?

शक०—बची थी, पर न जाने वह कहाँ है। एक बालिका—अपनी माता की स्मृति—सुवासिनी। पर अब कहाँ है, कौन जाने !

चाणक्य—क्या कहा ? सुवासिनी !

शक०—हाँ, सुवासिनी।

चाणक्य—और तुम शकटार हो ?

शक०—(चाणक्य का गला पकड़ कर)—घोंट दूंगा गला—यदि फिर यह नाम तुमने लिया ! मुझे नन्द से प्रतिशोध ले लेने दो, फिर चाहे डौंडी पीटना।

चाणक्य—(उसका हाथ हटाते हुए)—वह सुवासिनी नन्द की रंगशाला में है। मुझे पहचानते हो ?

शक०—नहीं तो—(देखता है।)

चाणक्य—तुम्हारे प्रतिवेशी, सखा, ब्राह्मण चणक का पुत्र विष्णुगुप्त। तुम्हारी दिलाई हुई जिसकी ब्रह्मवृत्ति छीन ली गई, जो तुम्हारा सहकारी जान कर निर्वासित कर दिया गया, मैं उसी चणक का पुत्र चाणक्य हूँ, जिसकी शिखा पकड़ कर राजसभा में खींची गई, जो बन्दीगृह में मृत्यु की परीक्षा कर रहा था ! मुझ पर विश्वास करोगे ?

शक०—(विचारता हुआ खड़ा हो जाता है)—करूंगा। जो तुम कहोगे, वही करूंगा। किसी तरह प्रतिशोध चाहिये।

चाणक्य—तो चलो मेरी झोंपड़ी में ! बस सुरंग को घास-फूस से ढंक दो।

(दोनों ढंक कर जाते हैं।)

चौथा दृश्य

स्थान—पथ।

चाणक्य और पर्वतेश्वर

चाणक्य—पौरव, ठीक अवसर पर तुम पहुँचे! चन्द्रगुप्त कहाँ है?

पर्व०—सार्थवाह रूप से युद्ध-व्यवसायियों के साथ आ रहे हैं। एक पहर में पहुंच जाने की सम्भावना है।

चाणक्य—और द्वन्द्व में क्या हुआ?

पर्व०—चन्द्रगुप्त ने बड़ी वीरता से वह युद्ध किया। समस्त उत्तरापथ में फिलिपस के मारे जाने पर नया उत्साह फैल गया है। आर्य्य, वहुत से प्रमुख यवनों और आर्य्यगण की उपस्थिति में वह युद्ध हुआ—वह खड्ग परीक्षा देखने के योग्य थी। चन्द्रगुप्त ने प्रहर भर समर किया और फिलिपस को धराशायी बनाया!

चाणक्य—यवन लोगों के क्या भाव थे?

पर्व०—सिंहरण अपनी सेना के साथ रंगशाला की रक्षा कर रहा था, कुछ हलचल तो हुई, पर वह पराजय का क्षोभ था। यूडेमिस, जो उसका सहकारी था, अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। पर बिना सिकन्दर की आज्ञा के वह कुछ न कर सकता था। मैंने भी सान्त्वना दी। किसी प्रकार वह ठण्डा पड़ा। यूडेमिस सिकन्दर की आज्ञा की प्रतीक्षा में रुका था। अकस्मात् सिकन्दर के मरने का समाचार मिला। यवन लोग अब अपनी ही सोच रहे हैं। मैं

सिंहरण को वहीं छोड़ कर यहाँ चला आया। क्योंकि आपका आदेश था।

[अलका का प्रवेश]

अलका—गुरु देव, यज्ञ का प्रारम्भ है।

चाणक्य—मालविका कहाँ है ?

अलका—वह बन्दी की गई और राक्षस इत्यादि भी बन्दी होने वाले हैं। वह भी ठीक ऐसे अवसर पर जब उन का परिणय हो रहा है। क्योंकि आज ही.........

चाणक्य—तब तुम जाओ, अलके ! उस उत्सव से तुम्हें अलग न रहना चाहिए। उनके पकड़े जाने के अवसर पर ही नगर भर में उत्तेजना फैल सकती है। जाओ शीघ्र।

[अलका का प्रस्थान]

पर्व०—मुझे क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—कुछ चुने हुए अश्वारोहियों को साथ लेकर प्रस्तुत रहना। चन्द्रगुप्त जब भीतर से युद्ध प्रारम्भ करे, उस समय तुमको नगर द्वार पर आक्रमण करना होगा।

(गुफा का द्वार खुलना—मौर्य्य, मालविका, शकटार, वररुचि, पीछे २ चन्द्रगुप्त की जननी का प्रवेश)

चाणक्य—आओ मौर्य्य !

मौर्य्य—हम लोगों के उद्धारकर्त्ता आप ही महात्मा चाणक्य हैं ?

माल०—हां यही हैं।

मौर्य्य—प्रणाम।

चाणक्य—शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए जियो सेनापति! नन्द के पापों की पूर्णता ने तुम्हारा उद्धार किया है। अब तुम्हारा अवसर है।

मौर्य्य—इन दुर्बल हड्डियों में अन्धकूप की भयानकता खटखटा रही है।

शकटार—और रक्त-मय गम्भीर वीभत्स दृश्य हत्या का निष्ठुर आह्वान कर रहा है।

(चन्द्रगुप्त का प्रवेश—माता-पिता के चरण छूता है।)

चन्द्र०—पिता! तुम्हारी यह दशा!! एक एक पीड़ा की, प्रत्येक निष्ठुरता की गिनती होगी। मेरी माँ! उन सबका प्रतिहार होगा, प्रतिशोध किया जायगा! ओह! मेरा जीवन व्यर्थ है—यह दुर्दशा भोगनी पड़ी—मेरे माता-पिता को! नन्द! सावधान!

चाणक्य—चन्द्रगुप्त, सफलता का एक ही क्षण होता है। आवेश में और कर्त्तव्य में बहुत अन्तर है।

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव, आज्ञा दीजिये।

चाणक्य—देखो उधर—नागरिक लोग आ रहे हैं। सम्भवतः यही अवसर है तुम लोगों के भीतर जाने का और विद्रोह फैलाने का।

(नागरिकों का प्रवेश)

पहिला नागरिक—वेण और कंस का शासन क्या दूसरे प्रकार

का रहा होगा ? यह अन्धेर !

दूसरा नाग०—ब्याह की वेदी से वर-वधू को घसीट ले जाना—इतने बड़े नागरिक का यह अपमान ! अन्याय है ।

तीसरा नाग०—सो भी अमात्य राक्षस और सुवासिनी को ! कुसुमपुर के दो सुन्दर फूल ।

चौथा नाग०—और सेनापति, मन्त्री, सबों को अंधकूप में डाल देना !

मौर्य्य—मन्त्री, सेनापति और अमात्यों को बन्दी बना कर जो राज्य करता है—वह कैसा अच्छा राजा है नागरिक ! उस की कैसी अद्भुत योग्यता है ! मगध को गर्व होना चाहिये ।

पहला नाग०—गर्व नहीं वृद्ध ! लज्जा होनी चाहिये । ऐसा जघन्य अत्याचार !

वररुचि—यह तो मगध का पुराना इतिहास है । जरासन्ध का यह अखाड़ा है । यहाँ एकाधिपत्य की कटुता सदैव से अभ्यस्त है ।

दूसरा नाग०—अभ्यस्त होने पर भी अब असह्य है ।

शक०—आज आप लोगों को बड़ी वेदना है, एक उत्सव का भङ्ग होना अपनी आँखों से देखा है—केवल इसी लिये, नहीं तो जिस दिन शकटार को दण्ड मिला था, एक अभिजात नागरिक की सकुटुम्ब हत्या हुई थी, उस दिन जनता कहाँ सोई हुई थी !

तीसरा नाग०—सच तो, पिता के समान हम लोगों की रक्षा करने वाला मन्त्री शकटार—हे भगवान् !

शक०—मैं ही हूँ ! कङ्काल-सा जीवित समाधि से उठ खड़ा हुआ हूँ ! मनुष्य मनुष्य को इस तरह कुचल कर स्थिर न रह सकेगा ! उत्पीड़न, शास्त्रों को—नियमों के समर्थन को नहीं समझता। मैं पिशाच बनकर लौट आया हूँ—अपने निरपराध सात पुत्रों की निष्ठुर हत्या का प्रतिशोध लेने के लिये ! चलोगे साथ ?

चौथा नाग०—मन्त्री शकटार ! आप जीवित हैं ?

शक०—हाँ, महापद्म के पुत्र नन्द की—वधिक, हिंस्र-पशु नन्द की —प्रतिहिंसा का लक्ष्य शकटार मैं ही हूँ !

सब नाग०—हो चुका न्यायाधिकरण का ढोंग ! जनता की शुभ कामना करने की प्रतिज्ञा अन्त हो गई। अब नहीं, आज न्यायाधिकरण में पूछना होगा !

मौर्य्य—और मेरे लिये भी कुछ······

नाग०—तुम......?

मौर्य्य—सेनापति मौर्य्य—जिन का तुम लोगों को पता ही न था।

नाग०—आश्चर्य ! हम लोग आज क्या स्वप्न देख रहे हैं ? अभी लौटना चाहिये। चलिये आप लोग भी।

शक०—परन्तु मेरी रक्षा का भार कौन लेता है ?

(सब इधर-उधर देखने लगते हैं, चन्द्रगुप्त तन कर खड़ा हो जाता है।)

चन्द्र०—मैं लेता हूँ ! मैं उन सब पीड़ित, आघात-जर्जर, पद-दलित लोगों का संरक्षक हूँ, जो मगध की प्रजा हैं।

चाणक्य—साधु चन्द्रगुप्त !

(सहसा सब उत्साहित हो जाते हैं, पर्वतेश्वर और चाणक्य तथा वररुचि को छोड़ कर सब जाते हैं।)

वररुचि—चाणक्य ! यह क्या दावाग्नि फैला दी तुमने ?

चाणक्य—उत्पीड़न की चिनगारी को अत्याचारी अपने ही अञ्चल में छिपाये रहता है, कात्यायन ! तुमने अन्धकूप का सुख क्यों लिया ?—कोई अपराध तुमने किया था ?

वर०—नन्द की भूल थी। वह अब भी सुधारा जा सकता है। ब्राह्मण ! क्षमानिधि ! भूल जाओ !

चाणक्य—प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर हम तुम साथ ही वैखानस होंगे कात्यायन ! शक्ति हो जाने दो, फिर क्षमा का विचार करना। चलो पर्वतेश्वर ! सावधान !

(सब का प्रस्थान।)

पाँचावाँ दृश्य

(नन्द की सभा—सुवासिनी और राक्षस बन्दीवेश में)

नन्द—अमात्य राक्षस, यह कौन-सी मन्त्रणा थी ? यह पत्र तुम्हीं ने लिखा है ?

राक्षस—(पत्र लेकर पढ़ता हुआ)—"सुवासिनी, उस कारागार से शीघ्र निकल भागो, इस स्त्री के साथ मुझ से आकर मिलो।

मैं उत्तरापथ में नवीन राज्य की स्थापना कर रहा हूं। नन्द से फिर समझ लिया जायगा" —इत्यादि । (नन्द की ओर देख कर) आश्चर्य, मैंने तो यह नहीं लिखा ! यह कैसा कुचक्र है ?

नन्द—सुवासिनी को अपने साथ लेकर नवीन राज्य की सृष्टि !

राक्षस—प्रपंच है—और किसी का नहीं उसी ब्राह्मण चाणक्य का महाराज, सतर्क रहिये, अपने अनुकूल परिजनों पर भी अविश्वास न कीजिये। कोई भयानक घटना होने वाली है, यह उसी का सूत्रपात है !

नन्द—इस तरह मैं प्रतारित नहीं किया जा सकता, देखो यह तुम्हारी मुद्रा है। (मुद्रा देता है)

(राक्षस देखकर सिर नीचा कर लेता है।)

नन्द—कृतघ्न ! बोल, उत्तर दे !

राक्षस—मैं कहूं भी तो आप मानने ही क्यों लगे !

नन्द—तो आज तुम लोगों को भी उसी अन्धकूप में जाना होगा।

(राक्षस बन्दी किया जाता है। नागरिकों का प्रवेश)

(राक्षस को शृंखला में जकड़ा देखकर उन सबों में उत्तेजना।)

नाग०—सम्राट् ! आप से मगध की प्रजा प्रार्थना करती है कि नागरिक राक्षस और अन्य लोगों पर भी राजदण्ड द्वारा किये गये जो अत्याचार हैं, उनका फिर से निराकरण होना चाहिए।

नन्द—क्या ? तुम लोगों को मेरे न्याय में अविश्वास है ?

नाग०—इस के प्रमाण हैं—शकटार, वररुचि और मौर्य !

नन्द—(उन लोगों को देख कर)—शकटार ! तू अभी जीवित है !

शक०—जीवित हूं नन्द ! नियति सम्राटों से भी प्रबल है !

नन्द—यह मैं क्या देखता हूँ ! प्रतिहार, पहले इन विद्रोहियों को बन्दी करो । क्या तुम लोगों ने इन्हें छुड़ाया है ?

नाग०—इन का न्याय हम लोगों के सामने किया जाय, जिससे हम लोगों का राज्य-नियमों में विश्वास हो । सम्राट् ! न्याय को गौरव देने के लिये, अपराध सुनने की इच्छा आप की प्रजा रखती है ।

नन्द—प्रजा की इच्छा से राजा को चलना होगा ?

नाग०—हाँ महाराज !

नन्द—क्या तुम सब के सब विद्रोही हो ?

नाग०—यह, सम्राट् अपने हृदय से पूछ देखें !

शक०—मेरे साथ निरपराध पुत्रों का रक्त !

नाग०—न्यायाधिकरण की आड़ में इतनी बड़ी नृशंसता !

नन्द—प्रतिहार ! इन सभी को बन्दी बनाओ !

(राज-प्रहरियों का सब को बाँधने का उद्योग, दूसरी ओर से सैनिकों के साथ चन्द्रगुप्त का प्रवेश)

चन्द्र०—ठहरो ! (सब स्तब्ध रह जाते हैं ।) महाराज नन्द !

हम सब आप की प्रजा हैं, मनुष्य से हमें पशु बनने का अवसर न दीजिये।

वररुचि—विचार की बात है, यदि सुव्यवस्था से काम चल जाय तो उपद्रव क्यों हों ?

नन्द—(स्वगत) विभीषिका ! विपत्ति ! सब अपराधी और विद्रोही एकत्र हुये हैं ! (कुछ सोच कर, प्रकट) अच्छा मौर्य्य ! तुम हमारे सेनापति हो और तुम वररुचि ! हमने तुम लोगों को क्षमा कर दिया।

शक०—और हम लोगों से पूछो, पूछो नन्द ! अपनी नृशंसताओं से पूछो ! क्षमा ? कौन करे ! तुम ? कदापि नहीं, तुम्हारे घृणित अपराधों का न्याय होगा।

नन्द—(तन कर)—तब रे मूर्खो ! देखो नन्द की निष्ठुरता ! प्रतिहार ! राजसिंहासन सङ्कट में है, आओ आज हमें प्रजा से लड़ना है ! हो युद्ध !

(प्रतिहार प्रहरियों के साथ आगे बढ़ता है—कुछ युद्ध होने के साथ ही राजपक्ष के कुछ लोग मारे जाते हैं और एक सैनिक आकर नगर के ऊपर आक्रमण होने की सूचना देता है। युद्ध करते करते चन्द्रगुप्त नन्द को बन्दी बनाता है।)

(चाणक्य का प्रवेश)

चाणक्य—नन्द ! शिखा खुली है—फिर खिंचवाने की इच्छा हुई है, इसी लिये आया हूँ। राजपद के अपवाद नन्द ! आज तुम्हारा विचार होगा !

नन्द—तुम ब्राह्मण ! मेरे टुकड़ों से पले हुए ! दरिद्र ! तुम मगध के सम्राट् का विचार करोगे ! तुम सब लुटेरे हो—डाकू हो ! विप्लवी हो—अनार्य्य हो !

चाणक्य—(राजसिंहासन के पास जाकर) नन्द ! तुम्हारे ऊपर इतने अभियोग हैं—महापद्म की हत्या, शकटार को बन्दी करना—उस के सातों पुत्रों को भूख से तड़पा कर मारना ! सेनापति मौर्य्य की हत्या का उद्योग—उस की स्त्री को और वररुचि को बन्दी बनाना ! कितनी ही कुलीन कुमारियों का अपमान, नगर भर में अपमान का स्रोत बहाना ! ब्रह्म व और अनाथों की वृत्तियों का अपहरण ! अन्त में सुवासिनी पर अत्याचार—शकटार की एक मात्र बची हुई सन्तान, सुवासिनी, जिसे तुम मार डालना चाहते थे।

नागरिक—(बीच में रोक कर, हल्ला मचाते हुए)—पर्य्याप्त है ! यह पिशाच-लीला और सुनने की आवश्यकता नहीं, सब प्रमाण उपस्थित हैं।

चन्द्र०—ठहरिये !—(नन्द से)—कुछ उत्तर देना चाहते हैं आप ?

नन्द—कुछ नहीं।

("बध करो ! हत्या करो !"—का आतङ्क फैलता है)

चाणक्य—तब भी कुछ समझ लेना चाहिये। नन्द ! हम ब्राह्मण हैं, तुम्हारे लिये भिक्षा माँग कर तुम्हें जीवन-दान दे

सकते हैं, लोगे ?

("नहीं मिलेगी, नहीं मिलेगी" का हल्ला)

[कल्याणी को वन्दिनी बनाये पर्वतेश्वर का प्रवेश—]

नन्द—आह बेटी, असह्य! मुझे क्षमा करो। चाणक्य, मैं कल्याणी के सङ्ग जङ्गल में जाकर तपस्या करना चाहता हूँ।

चाणक्य—नागरिक वृन्द! आप लोग आज्ञा दें—नन्द को जाने की आज्ञा दें!

शक०—(छुरा निकाल कर नन्द की छाती में घुसेड़ देता है)—सात हत्याएँ हैं! यदि नन्द सात जन्मों में मेरे ही द्वारा मारा जाय तो मैं उसे क्षमा कर सकता हूं। मगध नन्द के बिना भी जी सकता है!

वररुचि—अनर्थ!

(सब स्तब्ध रह जाते हैं)

राक्षस—चाणक्य, मुझे भी कुछ बोलने का अधिकार है ?

चन्द्र०—अमात्य राक्षस का बन्धन खोल दो! आज मगध के सब नागरिक स्वतन्त्र हैं!

(राक्षस, सुवासिनी, कल्याणी का बन्धन खुलता है।)

राक्षस—राष्ट्र इस तरह नहीं चल सकता।

चाणक्य—तब ?

राक्षस—परिषद् की आयोजना होनी चाहिये।

नागरिकवृन्द—राक्षस, वररुचि, शकटार, चन्द्रगुप्त और चाणक्य की सम्मिलित परिषद् की हम घोषणा करते हैं।

चाणक्य—परन्तु उत्तरापथ के समान गणतन्त्र योग्यता मगध में नहीं, और मगध पर विपत्ति की भी सम्भावना है। प्राचीन काल से मगध साम्राज्य रहा है, इसलिये यहाँ एक सबल और सुनियन्त्रित शासक की आवश्यकता है। आप लोगों को यह जान लेना चाहिये कि यवन अभी हमारी छाती पर हैं।

नाग०—तो कौन इसके उपयुक्त है?

चाणक्य—आप ही लोग इसे विचारिये।

शक०—हम लोगों का उद्धारकर्त्ता! उत्तरापथ के अनेक समरों का विजेता—वीर चन्द्रगुप्त!

नाग०—चन्द्रगुप्त की जय!

चाणक्य—अस्तु, बढ़ो चन्द्रगुप्त! सिंहासन शून्य नहीं रह सकता। अमात्य राक्षस! सम्राट् का अभिषेक कीजिये!

(मृतक हटाये जाते हैं; कल्याणी दूसरी ओर जाती है, राक्षस चन्द्रगुप्त का हाथ पकड़ कर सिंहासन पर बैठाता है।)

चाणक्य—सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय! मगध की जय!

सब नाग०—सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय! मगध की जय!

चाणक्य—मगध के स्वतन्त्र नागरिकों को बधाई है! आज आप लोगों के राष्ट्र का नवीन जन्म-दिवस है! स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतन्त्र उत्पन्न किया है, परन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता वहीं तक दी जा सकती है, जहाँ तक दूसरों

की स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े। यही राष्ट्रीय नियमों का मूल है। वत्स चन्द्रगुप्त ! स्वेच्छाचारी शासन का परिणाम तुमने स्वयं देख लिया है। मन्त्रि-परिषद् की सम्मति से मगध और आर्यावर्त के कल्याण में लगो।

("सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय" का घोष)

[पटाक्षेप।]

———

सुदामा के तन्दुल

[एकाङ्की नाटक]

(श्री सेठ गोविन्ददास)

पात्रः—

देवराज—मन्त्री (मिनिस्टर)

गफ़ूर खां—मन्त्री का व्यक्तिगत सहायक

हमीदुल्ला—मन्त्री का चपरासी

पूरनचन्द }
उदयचन्द } —देहाती स्वयं-सेवक

स्थान—एक बड़ा नगर, प्रान्त की राजधानी

सुदामा के तन्दुल

(एकाङ्की नाटक)

स्थान—एक बड़ा नगर। प्रान्त की राजधानी।

स्थान—देवराज के बंगले का प्रतीक्षागृह (वेटिङ्ग-रूम)।

समय—मध्याह्न।

[कमरे की दीवालें सफेद कलई से पुती हैं। पीछे की दीवाल में तीन खिड़कियां हैं, जिन से बाहर के उद्यान का कुछ भाग दिखाई देता है। ग्रीष्म के मध्याह्न का प्रखर सूर्य बगीचे को तपा रहा है। बांई ओर की दीवाल में एक दरवाजा है, जो बरामदे में खुलता है और इससे बरामदे का कुछ हिस्सा दिख रहा है। दाहिनी तरफ की दीवाल में भी एक दरवाजा है, जो बन्द है। कमरे की छत से बिजली की कुछ बत्तियां झूल रहीं हैं; ज़मीन पर कालीन बिछा है और उस पर सोफ़ा सेट रखा है। कुछ कुर्सियां तथा टेबिल सजी हैं। पीछे की दीवाल की बीच की खिड़की के ऊपर एक बोर्ड लगा है, जिस पर अंग्रेज़ी में लिखा है—वेटिंग रूम (Waiting Room)। बाईं ओर के दरवाजे से पूरनचन्द और उदयचन्द को साथ लिए हुए हमीदुल्ला का प्रवेश। हमीदुल्ला अधेड़ अवस्था का ऊँचा, पूरा मनुष्य है। सरकारी वरदी पहने है। कमरबन्द में

कटार लगी हुई है। पूरनचन्द और उदयचन्द करीब ४० वर्ष की उम्र के दुबले-पतले आदमी हैं। पूरनचन्द कुछ ऊँचा है और उदयचन्द ठिगना। दोनों खादी के कुरते-धोतियां पहने हैं और सिर पर गांधी टोपियां लगाये हैं। पैर में देहाती जूते हैं। पूरनचन्द गले में दुपट्टा लिए है। दुपट्टे की एक छोर में कुछ बंधा हुआ है। दोनों के वस्त्र और जूते कुछ बहुत साफ़-सुथरे नहीं हैं। पूरनचन्द की बगल में दो फाइलें दबी हैं। दोनों ही फाइलें बहुत जीर्ण-शीर्ण दशा में हैं। उदयचन्द के बगल में एक नई फाइल दबी हुई है।]

हमीदुल्ला—आप लोग यहीं बैठो, मैं सेक्रेटरी साहब को इत्तला करता हूँ। वे साहब को खबर देंगे। (जाने लगता है, फिर रुककर) हां, आप लोगों का नाम तो—पूरनमल और उदयचन्द है न...?

पूरनचन्द—जी, पूरनचन्द...

उदयचन्द—और उदयचन्द।

हमीदुल्ला—(जाते-जाते रुककर) और गांव? गांव आपने कौन-सा बताया था?

पूरनचन्द—कठौता।

हमीदुल्ला—कठौता?

उदयचन्द—जी, जी...

हमीदुल्ला—बहुत अच्छी बात है।

[हमीदुल्ला का बाईं ओर के दरवाजे से प्रस्थान। पूरनचन्द और उदयचन्द सोफ़े पर बैठते हैं।]

पूरनचन्द—(एकदम से सेफ़ से उठते हुए) नहीं, नहीं, इस कौच पर हमें नहीं बैठना चाहिए। यहां तो वे आकर बैठेंगे।

उदयचन्द—(बैठे-बैठे ही) तो क्या हम बराबरी से बैठ भी नहीं सकते ?

पूरनचन्द–(दूसरी कुरसी पर बैठते हुए) अरे भाई, वे मन्त्री हैं !

उदयचन्द—तो क्या हुआ, हम देश-भक्त हैं। और उनसे बड़े देश भक्त। वे जेल नहीं गये। हम तीन-तीन दफ़ा जेल हो आए हैं।

[नेपथ्य में दाहिनी ओर से बातचीत की अस्पष्ट ध्वनि आती है।]

उदयचन्द—(उसी ध्वनि की ओर झुककर कान लगाते हुए) चुप–चुप !

[उदयचन्द भी चुपचाप उसी आवाज़ को सुनने लगता है। आवाज़ स्पष्ट सुनाई नहीं देती, कुछ देर तक दोनों नहीं बोलते।]

उदयचन्द—कुछ साफ नहीं सुन पड़ता।

पूरनचन्द—मैं कहता हूँ कि कौच पर मत बैठो। (अपने नज़दीक की कुर्सी की ओर इशारा कर) इस पर आकर बैठ जाओ। कोई हरज न हो जायगा।

उदयचन्द—(उठकर पूरनचन्द के निकट की कुर्सी पर बैठते हुए) कौच पर बैठे रहने में कोई नुकसान तो था नहीं, पर खैर, जैसा तुम कहो।

पूरनचन्द—(कमरे को चारों तरफ़ से देखते हुये बोर्ड पर दृष्टि जमाकर) यह क्या लिखा है, उदयचन्द भइया ? (पहले अक्षर W [डबल्यू] को पढ़ने की कोशिश करते हुये) एम ...

उदयचन्द—(बोर्ड को ही देखते हुये) एम नहीं, डबलू है।

पूरनचन्द—डबलू ! डबलू नहीं, एम है।

उदय चन्द—कभी नहीं। डबलू है।

पूरनचन्द—अच्छा पहले मुझे पढ़ने दो —एम, ए, वन—

उदयचन्द—सब गलत।

पूरनचन्द—सब गलत। एम के बाद का एन हो तो चार चार आने की शर्त।

उदयचन्द—नहीं, वह तो ए है, पर उसके इधर की तरफ एम नहीं डबलू है और उधर की तरफ वन नहीं 'आई' है।

पूरनचन्द—मतलब क्या निकला ?

उदयचन्द—मतलब ? पूरा पढ़ने पर मतलब निकलेगा।

पूरनचन्द—अच्छा, तुम्हीं पढ़ो।

उदयचन्द—डबलू, ए, आई, टी, आई, एन, सी...

पूरनचन्द—सी कभी नहीं, वह जी है।

उदयचन्द—नहीं, सी है। मुझे पूरा पढ़ तो लेने दो।

पूरनचन्द—अच्छा पढ़ो, पढ़ो।

उदयचन्द—(फिर से पढ़ते हुये) डबलू, ए, आई, टी, सी, आई, एन, सी, आर, ओ, ओ, एम।

पूरनचन्द—क्या हुआ ?

उदयचन्द—वे आइ, टी सी आई, एन सी आर, ओ ओ एम।

पूरनचन्द—माने।

उदयचन्द—माने क्या! पढ़ तो दिया!

पूरनचन्द—परन्तु मतलब क्या निकला ?

उदयचन्द—इतनी अंगरेज़ी मैं कहाँ जानता हूँ।

पूरनचन्द—नहीं, देखो, मैं मतलब निकालता हूँ। एम, ए, वन। याने मिनिस्टर एम० ए हैं न और वन (एक) नम्बर में आये होंगे।...टी...

[नेपथ्य से अब कुछ ज्यादा आवाज़ आती है।]

उदयचन्द—चुप-चुप, देखो, इस दफ़ा कुछ समझ में आयगा।

[दोनों चुप होकर कान लगाकर सुनते हैं, पर कुछ समझ में नहीं आता और आवाज़ फिर धीमी पड़ जाती है।]

पूरनचन्द—(फिर बोर्ड की ओर देखते हुए) अच्छा, देखो, पढ़ता हूँ।

उदयचन्द—अरे जाने भी दो। अब यह बताओ कि मन्त्री साहब से क्या क्या कहना है?

पूरनचन्द—बातों के पहले यह कहो नमस्कार कैसे करना है।

उदयचन्द—नमस्कार। नमस्कार नहीं करना चाहिये—कहना चाहिए—गुड मारनिंग।

पूरनचन्द—अंग्रेजी में? गुलामी भाषा में। नहीं, नमस्कार करना चाहिये, दोनों हाथ जोड़कर और मुँह से कहना चाहिये—वन्देमातरम्।

उदयचन्द—अच्छी बात है, मान लिया—वन्देमातरम्।

पूरनचन्द—(खड़े हो हाथ जोड़ कर) वन्देमातरम् मन्त्री साहब!

उदयचन्द—नहीं, मन्त्री साहब नहीं, आज-कल कांग्रेसी कांग्रेस वालों को एक नये नाम से पुकारते हैं।

पूरनचंद—(फिर से बैठते हुये) किस नाम से ?

उदयचंद—कामरेड (साथी)।

पूरनचंद—फिर वही गुलामी भाषा।

उदयचंद—पर भाई, यह सबद तो अपनी भाषा में ले लिया गया है। कामरेड तो कहना ही होगा।

पूरनचंद—अच्छा कामरेट सही।

उदयचंद—कामरेट नहीं, कामरेड।

पूरनचंद—(फिर खड़े हो हाथ जोड़कर) इस तरह वन्देमातरम् कामरेड मन्त्री साहब।

उदयचंद—कामरेड के साथ 'मन्त्री साहब' नहीं बोला जाता।

पूरनचंद—(फिर बैठते हुए) तो ?

उदयचंद—नाम लिया जाता है। कहना होगा—वन्देमातरम् कामरेड देवराज।

पूरनचंद—सिर्फ़ देवराज ! यह तो गुस्ताखी होगी।

उदयचंद—कामरेड जो देवराज के साथ लगा हुआ है।

पूरनचंद—पर सुनने में अच्छा नहीं लगता। (विचार करते हुये) देखो, ऐसा करो।

उदयचंद—कैसा ?

पूरनचंद—(फिर खड़े हो कर हाथ जोड़ कर) वन्देमातरम् कामरेड देवराज जी !

उदयचंद—(विचारते हुये) अच्छा, ऐसा ही सही।

पूरनचंद—(बैठते हुये) अच्छा आगे क्या ?

उदयचंद—इसके बाद हमारा तो कोई स्वार्थ है नहीं। गाँववालों की विपदाएँ बताएँगे और क्या ? कहेंगे, लगान बहुत अधिक है। पटवारी और रेवन्यूइन्सपेक्टर फसल की जाँच ठीक नहीं करते, जमींदार और तहसीलदार मिलकर वसूली में बहुत तंग करते हैं--रसद और बेगार भी अभी पूरी तरह बन्द नहीं हुई। (अपनी बगल की फाईल की ओर संकेत कर) इसके कुल कागद पढ़ देंगे।

पूरनचंद—पर इसके पहले और कुछ कहना है ?

उदयचंद—क्या ?

पूरनचंद—(ज़ोर से) हम लोगों की जुगों की तपस्या सफल हो गई !

उदयचंद—कभी नहीं।

पूरनचंद--क्यों ?

उदयचन्द—इसके मन्त्री होने से हमारी जुगों की तपस्या कैसे सफल हो गई ? तपस्या सफल होगी तब, जब स्वराज होगा।

पूरनचन्द--अच्छा जाने दो, यह नहीं कहेंगे। पर एक काम तो करना ही होगा।

उदयचन्द--क्या ?

पूरनचन्द--जो सौगात मैं लाया हूं, वह तो देनी ही होगी।

उदयचन्द—पेड़े ?

पूरनचन्द—हाँ भाई, तुम्हारी भौजी ने बनाए हैं—उन में केसर डाला है, मिसरी का रवा भी, और इलायची बुरकाई है।

यही नहीं, जब ये चुनाव के दौरे में कठौता आये थे, तब इसी तरह के पेड़े कितने पसन्द किए थे ? माँग-माँग कर खाए थे। कहा था, ज़िन्दगी में ऐसे पेड़े कभी नहीं खाये।

उदयचन्द—हाँ, पेड़े दे देना।

पूरनचन्द—पर कुछ कह के देना चाहिए।

उदयचन्द–क्या कहोगे ?

पूरनचन्द – तुम्हारी भौजी ने कहा था, यों कहना, ये सुदामा के तन्दुल हैं। भगवान के लिए जिस तरह उनकी भौजी ने तन्दुल भेजे थे, उसी तरह आपकी भौजी ने आपके लिए ये पेड़े भेजे हैं।

[उदयचंद जोर से हंस पड़ता है।]

पूरनचन्द—मैं कुछ नहीं कहता, तुम्हारी भौजी का सन्देशा है इसलिए तुम कह देना।

[नेपथ्य में फिर कुछ ज़ोर से आवाज़ आने लगती है। पूरनचंद उठकर जल्दी से दाहिनी तरफ के दरवाजे के निकट जाता, कान लगा कर सुनता तथा उंगली का इशारा कर उदयचंद को बुलाता है। उदय चंद नहीं आता। थोड़ी देर में पूरनचंद वापस आ जाता है।]

पूरनचन्द—(अपनी कुर्सी पर बैठते हुये) आवाज तो उन्हीं सरीखी थी, पर कुछ समझ में नहीं आया। (कुछ रुककर) पर क्यों, उदय भैया, वह हमें पहचान तो लेंगे न ?

उदयचन्द—इसमें कोई शक है। हम क्या मामूली आदमी हैं कि पहचाने ही न जाँय। सन् २० से हमारे संवाद पत्रों में छपते हैं, फोटू छपती है। फिर कठौता में हमने इन्हें ऐसा भोज दिया था, जैसा इन्होंने कहीं खाया न होगा।

पूरनचंद—और न पहचाना तो हम अपनी पहचान आप करा देंगे। अखबारों और चिट्ठियों का फाइल लाए ही हैं। (अपनी बगल की एक फाइल खोलते हुये) यह देखो सन् २१ के कलकत्ते के 'स्वतंत्र' में हमारे जेल जाने का हाल छपा है। (फाइल का पन्ना पलटते हुये) यह सन् २३ के बनारस के 'आज' में हमने सुराजपार्टी के चुनाव में जो मदद दी, उसका वरनन छपा है (फिर फाइल का पन्ना उलटकर) यह सन् २६ में कानपुर के 'चुनाव' में, जब हिंदूसभा का बड़ा ज़ोर था और मालवीयजी तथा लालाजी सरीखे नेता कांग्रेस का विरोध कर रहे थे, उस वक्त हमने चुनाव में कांग्रेस के लिए जो दौड़-धूप की थी, उसका हाल छपा है। (फिर फाइल का पन्ना उलटकर) यह जबलपुर के 'लोकमत' में सन् ३० में जब हम जेल गए थे उसका हाल छपा है। (फिर फाइल का पन्ना उलट कर) यह सन् ३२ में जब लाठीचार्ज में हम घायल हुए थे, उस वक्त का हाल प्रयाग के 'अभ्युदय' में छपा है। (जल्दी जल्दी बाकी पन्ने उलटते हुये) और भी न जाने कितने पत्र-पत्रिकाओं में हमारे समाचार और फोटू छपी है। (वह फाइल बंदकर दूसरा फाइल खोलते तथा उसके पन्ने उलटते हुये) और यह मालवीयजी, लालाजी, नेहरूजी, वग़ैरा-वग़ैरा की न जाने कितनी चिट्ठिएँ हैं। आखिर में तो मन्त्री साहब की ही चिट्ठी है, जो चुनाव के बाद उन्होंने हमारे पास धन्यवाद देते हुए भेजी थी। (वह फाइल भी बंद कर दोनों फाइलों को बगल में दबाते हुये) वे न पहचानेंगे तो हम यह सब न बता देंगे ?

उदयचन्द—नहीं नहीं, वे जरूर पहचान जायेंगे (कुछ रुककर) पर भाई, बड़ी देर हो गई। प्यास के के मारे गला सूखा जाता है।

पूरनचन्द—प्यास ! अरे पानी तो अभी आ जायगा । (बायें दरवाजे से बाहर जाकर ज़ोर से) चपरासी साहब ! ओ चपरासी साहब !

[पूरनचंद भीतर आता है ! पीछे-पीछे हमीदुल्ला ।]

हमीदुल्ला—(डांटते हुये) आपको इस तरह शोर नहीं करना चाहिए !

उदयचन्द—पर भाई, मारे प्यास के हमारे प्रान निकले जा रहे हैं ।

हमीदुल्ला—(घंटी का बटन दिखाते हुये) आपको इसे दबाना चाहिये था । अब कोई जरूरत पड़े तो इसे दबा दीजिये । यह मन्त्री का बँगला है, तमाशा नहीं । (बाहर जाते हुये) मैं पानी अभी भेजता हूं ।

उदयचन्द—आपने हम लोगों के आने की खबर दे दी ?

हमीदुल्ला—(कमरे के बाहर निकलते हुए) जी हाँ, सहायक साहब से कह दिया है । (जाता है ।)

पूरनचन्द—(जो चपरासी की डाँट के कारण अब तक खड़ा हुआ था, अब बैठते हुये) भाई, यहाँ तो बड़े-बड़े कानून-क़ायदे हैं ।

उदयचन्द—मन्त्री का बँगला है, तमाशा नहीं ।

पूरनचन्द—पर यह सब इन्हीं छोटे आदमियों के बीच होगा । मन्त्री साहब तो सच्चे कांग्रेसी···

[वरदी पहने हुये नौकर का रकाबी में दो पानी के गिलास लिये हुये प्रवेश । दोनों पानी पीते हैं। नौकर गिलास वापस ले जाता है।]

उदयचन्द—गरम पानी था । ज़रा भी ठंडा नहीं ।

पूरनचन्द—गरमी कितनी है !

उदयचन्द—पर हमने तो कठौता में इनके लिये पच्चीस मील से क्वाँर की गरमी में बरफ मँगाई थी। ये जेठ की गरमी में मिट्टी की सुराही का ही पानी पिला देते !

[नेपथ्य से ऊंची आवाज़ सुनाई देती है]

उदयचन्द—मन्त्री साहब की ही आवाज़ है। (दाहिनी ओर इशारा कर) इसी पास के कमरे में हैं। कहाँ तक बैठे रहेंगे, चलो, दरवाज़ा खोलकर वहीं चलें।

[उदयचन्द दाहिनी ओर जाकर दरवाज़ा खोलता है। दरवाज़े का एक पल्ला खुलते ही मन्त्री के कार्यालय का कुछ हिस्सा दिखाई देता है।]

नेपथ्य से--(ज़ोर से) यह कौन बदतमीज़ है, कि इस तरह दरवाज़ा खोल रहा है।

[उदयचन्द जलदी से अपनी कुर्सी पर आकर बैठता है। बाईं ओर से दौड़ते हुए हमीदुल्ला का प्रवेश।]

हमीदुल्ला--(दाहिनी ओर का दरवाज़ा बन्द करते हुये) आप लोगों ने तो कमाल कर दिया !

[बाईं ओर से गफूरखां का प्रवेश। वह अधेड़ अवस्था का ठिगना और मोटा आदमी है। अंग्रेज़ी लिबास है। हमीदुल्ला बायें दरवाज़े से बाहर जाता है। गफूरखां को देखकर पूरनचन्द और उदयचन्द खड़े होकर दोनों हाथों से उसे नमस्कार कर कहते हैं —'वन्देमात्रम्']

गफूरखां—(एक हाथ उठाकर दोनों के नमस्कार का उत्तर देते हुये) आप लोग माननीय मन्त्री साहब से मिलने आये हैं ?

पूरनचन्द—जी ।

गफ़ूरखां—आपने कोई समय नियत किया था ?

[पूरनचंद उदयचंद की ओर देखता है, उदयचंद पूरनचंद की ओर ।]

पूरनचन्द—(बग़ल से एक फाइल निकालकर उसकी आखिरी चिट्ठी गफ़ूरखां को दिखाते हुये) मन्त्री साहब हमको जानते हैं, यह देखिये, उनकी चिट्ठी है ।

गफ़ूरखां—जानने की बात नहीं है, आपने उनसे मिलने के लिए कोई समय लिया था ?

उदयचन्द—जी नहीं, पर जब वे हमारे गाँव में आये थे तब उन्होंने कहा था कि हम आधी रात को भी चाहें तो उनसे मिलने आ सकते हैं ।

गफ़ूरखां—आपके गाँव में वे कब गये थे ?

उदयचन्द—चुनाव के समय ।

गफ़ूरखां—आह ! वह बिलकुल दूसरी बात है । मिनिस्टर होने के बाद आपने उनसे मुलाक़ात का कोई समय नियत कराया था ?

[उदयचंद पूरनचंद और पूरनचंद उदयचंद की ओर देखते हैं]

गफ़ूरखां—(जाते हुये) माननीय मन्त्री साहब का कायदा है कि बिना समय नियत कराये वे किसी से नहीं मिलते और फिर आज तो उन्हें बिलकुल ही अवकाश नहीं है । बहुत...बहुत ही ज़रूरी काम में लगे हुए हैं ।

पूरनचन्द—(पीछे-पीछे जाते हुये) गिड़गिड़ाकर । पर... पर — हम लोग बहुत दूर से आए हैं । बहुत दूर से इस गरमी में ! न जाने

कितना खरच पड़ गया। हम दरशन चाहते हैं सिर्फ दरशन .. एक मिनट के लिए...

गफूरखां—(कुछ पिघलते हुए) अच्छी बात है, मैं कहता हूँ। लेकिन कठिन, बहुत कठिन...(प्रस्थान)

पूरनचन्द—(उदयचंद के पास आकर) उदय भैया। (आंखों में आंसू आ जाते हैं।)

उदयचन्द—(बेपरवाही से) चलो चलें, न मिला तो न सही।

पूरनचन्द—जवाब तो सुन......

नेपथ्य में—(बहुत ज़ोर से) काम भी कुछ करूँ कि बस दिन और रात मुलाक़ात ! एक साथ दस तो हो नहीं सकता। नाकों दम हो गया !

[इसके बाद ही ज़ोर से कागज़ पटकने की आवाज़ आती है। पूरनचंद और उदयचंद चुपचाप एक दूसरे की ओर देखते हैं। बायें दरवाजे से देवराज और उसके पीछे गफूरखां का प्रवेश। देवराज की अवस्था लगभग ५० वर्ष की है। सिर और मुंछों के बाल आधे सफेद हो गये हैं। वह खादी की शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा पहने हैं। सिर नंगा और पैरों में पंजाबी जूते हैं। मंत्री को आते देख पूरनचंद का मुख खिल उठता है। उदयचंद के मुख पर भी कुछ प्रसन्नता अवश्य झलकती है। दोनों देवराज की ओर बढ़ते हैं।]

पूरनचन्द—(दोनों हाथ जोड़ कर) वन्देमातरम् का···काम.. मन्त्री साहब।

उदयचन्द—(दोनों हाथ जोड़ कर) वन्देमातरम् कामरेड देवराज !

देवराज—वन्देमात्रम्, वन्देमात्रम् । कहिये कहाँ से आना हुआ ?

पूरनचन्द—आप ने शायद हम लोगों को पहचाना नहीं। मेरा नाम पूरनचन्द है। (उदयचंद की ओर इशारा कर) इसका नाम उदयचन्द ।

देवराज—हाँ, इस वक्त मुझे याद नहीं आ रहा है।

पूरनचन्द—हम लोग कठौता गाँव में रहते हैं।

देवराज—कठौता ! यह गांव इसी जिले में है ?

पूरनचन्द—जी नहीं, प्रान्त के उत्तर का पहला जिला।

उदयचन्द—आप तो वहां चुनाव के समय आ चुके हैं। वहां आपको बहुत बड़ा भोज भी दिया गया था।

देवराज—चुनाव में कितनी जगह गया था। कितने भोज दिये गये थे। कोई कहां तक याद रख सकता है।

पूरनचन्द—(फाइल निकालकर देवराज की चिट्ठी बताते हुए) यह चिट्ठी आपने हमें लिखी थी।

देवराज—(चिट्ठी पर दृष्टि डालकर, बेपरवाही से) ओ ! धन्यवाद का सर्क्यूलर है।

पूरनचन्द—सरकू-सरकू नहीं, आप देखें, चिट्ठी है।

देवराज—हां, हां सर्क्यूलर भी चिट्ठी तो होती है।

पूरनचन्द—(दोनों फाइल देवराज को बढ़ाते हुए) हम लोगों का कुल हाल आपको इन कागजों से मालूम हो जायगा।

देवराज—ज़बानी कहिये न, आप क्या चाहते हैं ?

पूरनचन्द—हम चाहते ! हम चाहते क्या हैं ? मन्त्री साहब हम तो समझते हैं कि हम लोगों की तपस्या सफल हो गई।... और...और...(दुपट्टे की गांठ खोलकर उसमें बँधा हुआ पेड़ों का दोना निकालकर) ये सुदामा के तन्दुल हैं। भगवान् के लिए जिस तरह उनकी भौजी ने तन्दुल भेजे थे, उसी तरह आपकी भौजी ने आप के लिए ये पेड़े भेजे हैं। (पेड़े का दोना देवराज को देने लगता है।)

देवराज—(थोड़ा पीछे हटकर) मेज़पर रख दीजिये। मेरे हाथ ख़राब हो जांयगे। (घण्टी का बटन दबाता है।) और कोई काम ?

उदयचन्द—जी हां, हमारे यहां किसानों को बड़ा कष्ट है... (फाइल निकाल कर उसे खोलकर पढ़ते हुए) फसल...

देवराज—(बीच ही में रोक कर) अपने यहां का कुल हाल लिखकर आप अपने तहसीलदार की मार्फत भेज दीजिये।

उदयचन्द—लेकिन उसी की तो शिकायत...

देवराज—(बीच ही में) देखिये, मुझे दूसरे काम इससे कहीं ज़्यादा ज़रूरी हैं। दूसरे के वक्त की चोरी करने की अपेक्षा आप और कोई अच्छा काम कर सकते हैं।

[हमीदुल्ला का प्रवेश।]

देवराज—(पेड़े के दोने को दिखाकर) यह मिठाई ले जाओ। अपने बच्चों को खिला देना। (हमीदुल्ला दोना उठाता है।) और देखो, टेबिल अच्छी तरह साफ़ कर देना।

[हबीदुल्ला दोना उठाकर सलाम कर जाता है।]

देवराज—अच्छा, माफ़ कीजिये। मुझे आज बहुत...बहुत ज़रूरी काम है।

[देवराज और ग़फ़ूरखाँ बाँई ओर के दरवाजे से बाहर आते हैं। अत्यधिक निराशा की मुद्रा से पूरनचन्द और कुछ क्रोधमय मुद्रा से उदयचन्द हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हैं, पर उनके नमस्कार का भी कोई उत्तर नहीं मिलता। दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं।]

पूरनचन्द—वक्त की चोरी! हम लोग चोर!

उदयचन्द—मेरे तो भूख के मारे प्राण निकल रहे हैं। हमारा भोज खाया था। अब दो टुकड़ों के लिए भी न पूछा।

पूरनचन्द—उन पेड़ों से कुछ शान्ति मिलती। पर वे भी...

उदयचन्द—अरे मैं तो उससे छीनकर उन्हें खा जाता; पर इतने अपमान के बाद...

[दोनों धीरे-धीरे जाते हैं।]

[यवनिका पतन]

मुक्तधारा

[संक्षिप्त रूप]

(लेखक—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

रणजित्—उत्तरकूट का राजा।

मन्त्री—उत्तरकूट का मन्त्री।

विभूति—उत्तरकूट का सरकारी यन्त्रराज (इञ्जीनियर)

अभिजित्—उत्तरकूट का युवराज।

सञ्जय—उत्तरकूट का राजकुमार।

धनञ्जय—शिवतराई का वैरागी।

गणेश—शिवतराई का नेता।

विश्वजित्—रणजित् का चचा।

अम्बा—सुमन की माता।

उत्तरकूट के नागरिक, विद्यार्थी तथा अध्यापक और शिवतराई के नागरिक, बटु, उद्धव, आदि।

कथावस्तुः

उत्तरकूट और शिवतराई के लोगों में पुराना वैमनस्य था। उत्तरकूट के लोग वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न तथा अधिक शक्तिशाली थे। इससे शिवतराई पर उनका शासन था। उनके इञ्जीनियर विभूति ने २५ बरस के परिश्रम के बाद उत्तरकूट के एक बहुत बड़े झरने को बाँध दिया। शिवतराई को इसी झरने का पानी हरा-भरा बनाए हुए था। उत्तरकूट के राजा रणजित् तथा नागरिकों को विश्वास था कि इस कार्य के द्वारा वे शिवतराई के निवासियों को सदा के लिए अपने अधीन कर लेंगे। उत्तर-कूट के नागरिकों को बचपन से यही सिखाया जाता था कि केवल उत्तरकूटवासी इस पृथ्वी का शासन करने के योग्य हैं, शिवतराई के वासी बिलकुल हीन और असभ्य हैं, आदि।

उत्तरकूट के युवराज अभिजित को शिवतराई का वायसराय बना कर भेजा गया। उन्हें शिवतराई के लोगों से सच्ची सहानुभूति हो गई। युवराज अभिजित ने बांध बनाने का विरोध किया, इससे राजा रणजित ने उन्हें जेल में डाल दिया। जब बांध बन गया और उत्तरकूट के नागरिक खुशियां मनाने लगे, तो युवराज किसी तरह जेल से छूट गए और अकेले वह उस बड़े बांध पर गए। उन्हें बांध की कमज़ोरी पता थी, उस पर प्रहार कर उन्होंने बांध को तोड़ दिया। झरने की "मुक्तधारा" युवराज को अपने साथ बहा ले गई, परन्तु इस तरह आत्म-बलि देकर युवराज शिवतराई के लोगों के लिये देवता बन गए और उनके इस कार्य्य से दोनों राज्यों के भेद की खाई भी भर गई।

मुक्तधारा

[दृश्य—उत्तरकूट के पार्वत्य प्रदेश का एक मार्ग, जो भैरव के मन्दिर की ओर जाता है। सारे नाटक में दृश्य या घटनास्थल यही रहता है। दूर आकाश में विशाल लोहे के यन्त्र का मस्तक दिखाई देता है। उसके दूसरी ओर भैरव-मन्दिर के शिखर का त्रिशूल है। मार्ग के पार्श्व-भाग में स्थित आम्रकुञ्ज में उत्तरकूटाधिपति राजा रणजित् का शिविर है। आज अमावस्या के सायंकाल में भैरव-मन्दिर में आरती होने वाली है। राजा वहां पैदल जायँगे। मार्ग में वे अपने शिविर में विश्राम कर रहे हैं। राजा की सभा का यन्त्र-राज (इञ्जीनियर) विभूति पच्चीस वर्ष लगातार यत्न करने के पश्चात् आज 'मुक्तधारा' नामक झरने का लोहयन्त्र निर्मित बांध पूरा करने में समर्थ हुआ है। उत्तरकूट के निवासी अपने उपहारों सहित मन्दिर की ओर जाते हुए और मन्दिर के आंगन में राजकीय यन्त्र-राज (इञ्जीनियर) विभूति की सफलता के उपलक्ष्य में उत्सव मनाने की तैयारी करते हुए दीखते हैं। भैरव मन्दिर के पुजारी सब से आगे हैं। वे मन्दिर की परिक्रमा करते हुए दीखते हैं। भैरव की स्तुति-गान करते हुए उनमें से कुछ धूप जलाते हैं, कुछ घण्टा-घड़ियाल और कुछ शंख बजाते हैं। उनके गान में प्रत्येक ताल पर घण्टानाद होता है।]

[पुजारी मिल कर गाते हैं :—]

गान

जय भैरव, जय शङ्कर,
जय जय जय प्रलयङ्कर,
शङ्कर शङ्कर!

जय संशयभेदन,
जय बन्धन-छेदन,
जय संकट-संहर,
शङ्कर शङ्कर !

(पुजारियों का गाते हुए प्रस्थान ।)

[पूजा के लिए नैवेद्य लिये हुए एक विदेशी पथिक का प्रवेश और उसका उत्तरकूट के नागरिक से मिलना ।]

पथिक—आकश में वह क्या है ? उसे देखने से तो भय लगता है !

नागरिक—जानते नहीं ? मालूम पड़ता है, तुम विदेशी हो । यह यन्त्र है ।

पथिक—यन्त्र ? कैसा यन्त्र ?

नागरिक—हमारे राजकीय यन्त्रराज (इञ्जीनियर) विभूति ने इसके लिये जो २५ वर्ष तक परिश्रम किया था, वह आज पूरा हुआ है और उसी का यह उत्सव मनाया जा रहा है ।

पथिक—इस यन्त्र का कार्य क्या है ?

नागरिक—इसने मुक्तधारा के झरने को रोक दिया है ।

पथिक—बाप रे बाप ! यह तो एक राक्षस की मांस-रहित जबड़ों वाली खोपड़ी के समान दीखता है। यह तुम्हारे उत्तर-कूट के सिरहाने टकटकी लगाये खड़ा है। इसे रातदिन देखते-देखते तुम्हारे तो प्राण भी सूखकर लकड़ी हो जायँगे ! (प्रस्थान)

[अम्बा नाम्नी एक स्त्री का प्रवेश। एक सफेद चादर उसके सिर और शरीर को ढके है और उसका पल्ला धूल में घिसटता जाता है।]

अम्बा—सुमन ! मेरा सुमन ! क्या मेरा पुत्र सुमन मेरे घर नहीं लौटेगा ? (नागरिक के प्रति) तुम सब लौट आये, पर वही कहाँ है ?

नागरिक—तुम कौन हो ?

अम्बा—मैं जनाई गाँव की रहने वाली अम्बा हूं। मेरा सुमन, वह मेरी आँखों की ज्योति है, मेरे प्राणों का निश्वास है। हा ! मेरा सुमन !

नागरिक—उसका क्या हुआ ?

अम्बा—मुझे पता नहीं कि वे उसे कहाँ ले गये। मैं भैरव-मन्दिर में पूजा करने गई थी और जब लौटी तो देखा कि उसको वे ले गये हैं।

नागरिक—तो निश्चय से उन्होंने उसे 'बाँध' के काम के लिए पकड़ लिया होगा।

अम्बा—मैंने सुना है कि वे उसे इसी मार्ग से ले गये हैं। उस गौरी पर्वत के पश्चिम की ओर—वहां तक मेरी दृष्टि नहीं

पहुँच सकती। मैं उसके आगे का मार्ग नहीं देख सकती।

नागरिक—अब रोने से क्या होगा? हम लोग भैरव-मन्दिर की आरती देखने जा रहे हैं। हमारे लिए आज उत्सव का दिन है। तुम भी चलो।

अम्बा—ना, ना, उस दिन भी तो मैं भैरव की आरती में गई थी। तब से पूजा के लिए जाने में डर लगता है। देखो, मैं तुम से कहती हूँ कि हमारी पूजा उस प्रभु तक नहीं पहुंचती। उसे कोई बीच में ही छीन लेता है।

नागरिक—कौन छीन लेता है?

अम्बा—वही जिसने मेरा सुमन मुझसे छीन लिया। मैं अब तक नहीं जानती कि वह कौन है। सुमन! मेरा सुमन! मेरा प्यारा सुमन!!

(दोनों जाते हैं।)

[मन्दिर की ओर जाते हुये मार्ग में विभूति को उत्तर-
कूट के युवराज अभिजित् का भेजा
हुआ दूत मिलता है]

दूत—विभूति, युवराज ने मुझे आपके पास भेजा है।

विभूति—उनकी क्या आज्ञा है?

दूत—आप बहुत दिन से मुक्तधारा के झरने का बाँध बनाने में लग रहे हैं। वह बाँध बार बार टूटा, न जाने कितने मनुष्य उसकी धूल और रेत में दबकर मर गये और न जाने कितने उसके पूर में बह गये। अन्त में आज—

विभूति—मेरा बाँध तैयार हो गया। उनके प्राणों का बलिदान व्यर्थ नहीं गया।

दूत—शिवतराई के निवासियों को अभी तक यह बात ज्ञात नहीं हुई है। वे इस बात पर विश्वास नहीं कर सकते कि कोई मनुष्य उनसे वह पानी छीन सकता है जो कि उनके लिए ईश्वर का दान है।

विभूति—ईश्वर ने उन्हें केवल पानी दिया है, परन्तु मुझे उस पानी को बाँधने की शक्ति भी दी है।

दूत—वे बेचारे नहीं जानते कि एक सप्ताह के भीतर उनके खेत—

विभूति—उनके खेतों की बात मुझसे क्यों कहते हो? मुझे उनके खेतों से क्या?

दूत—राजकुमार कहते हैं कि आपने एक वस्तु के निर्माण का गौरव तो प्राप्त कर ही लिया है, अब उसका विनाश करके और भी अधिक गौरव प्राप्त कीजिए।

विभूति—जब तक मेरा कार्य समाप्त न हुआ था, वह मेरा था; पर अब उस पर सारे उत्तरकूट का अधिकार है। मैं अब उसे नष्ट नहीं कर सकता।

दूत—युवराज कहते हैं कि तो फिर इस नष्ट करने के अधिकार को वे स्वयं अपने हाथ में ले लेंगे।

विभूति—क्या ये शब्द स्वयं युवराज के हैं? क्या वे हमसे दूसरे हैं? हममें से ही नहीं हैं? पराये हैं? शिवतराई के हैं?

दूत—राजकुमार कहते हैं कि उत्तरकूट में केवल यन्त्र का ही नहीं, प्रभु का भी राज्य है और यह अभी सिद्ध करना बाकी है कि उस प्रभु की इच्छा उत्तरकूट की सरकार के साथ है या नहीं। इस यन्त्र को उस इच्छा के बीच में न खड़ा करना चाहिए।

विभूति—यन्त्र की शक्ति के द्वारा यह सिद्ध करना ही मेरा उद्देश्य है कि ईश्वर का सिंहासन हमारा ही है। राजकुमार से कहना कि मेरे इस यन्त्र की मूठ को जरा भी हिला सके, ऐसा कोई भी मार्ग नहीं रहा है।

दूत—ईश्वर को जब नष्ट करना अभीष्ट होता है, तब किसी बड़े मार्ग की जरूरत नहीं पड़ती, छोटे छोटे छिद्र ही, जो हमें दीखते भी नहीं, नाश के लिए पर्याप्त होते हैं।

विभूति—(चौंक कर) छिद्र ! उनके विषय में तुम क्या जानते हो ?

दूत—मैं क्या जानता हूं ! अरे भाई, जिन्हें जानने की जरूरत है, वे स्वयं जान लेंगे। (जाता है।)

(महाराज रणजित् का मन्त्री सहित प्रवेश)

रणजित्—राजकुमार को शिवतराई भेजना मेरी इच्छा के प्रतिकूल था।

मन्त्री—क्यों महाराज ?

रणजित्—प्रभाव दूर से ही अच्छा पड़ता है। परिचय से अवज्ञा बढ़ती है। अपनी प्रजा के हृदयों पर प्रेम से अधिकार

किया जा सकता है, पर दूसरों को भय से ही वश में लाया जा सकता है।

मन्त्री—महाराज, आप भूल गये कि राजकुमार को शिवतराई भेजने का क्या कारण था। कुछ समय तक हमने उनके अन्दर एक गहरी अशान्ति का भाव देखा और हमें यह सन्देह हुआ कि राजकुमार को कहीं से पता चल गया है कि वे राजवंश में पैदा नहीं हुए हैं, प्रत्युत उस झरने के स्रोत के समीप पड़े पाये गये हैं। तव उनका मन दूसरी ओर लगाने के लिये—

रणजित्—हाँ, मैं जानता हूं। वह झरने के स्रोत के पास रात्रि में अकेला जाकर लेटा करता था। एक दिन अकस्मात् मैं जा पहुंचा और पूछा—"यहाँ क्यों आये हो?" उसने उत्तर दिया कि "इस झरने की ध्वनि में मुझे अपनी माता की वाणी सुनाई देती है।"

मन्त्री—एक बार मैंने राजकुमार से पूछा कि "तुम्हें क्या हो गया है, तुम बहुधा राजमहल से बाहर क्यों चले जाते हो?" उन्होंने उत्तर दिया कि "मैं संसार में मार्गों को खोलने आया हूँ। यही मेरे जीवन का आन्तरिक उद्देश्य है, जिसे मुझे अवश्य पूरा करना चाहिये।"

रणजित्—यह भविष्यवाणी कि "वह एक विशाल साम्राज्य का शासक होगा" अब ठीक नहीं मालूम होती।

(अम्बा का प्रवेश)

अम्बा—(राजा से) तुम कौन हो? सूर्य अस्त होने वाला है,

परन्तु मेरा सुमन अभी तक लौट कर नहीं आया।

रणजित्—तुम कौन हो?

अम्बा—मैं कोई नहीं। वह जो मेरा सर्वस्व था, इसी मार्ग में मुझ से छीन लिया गया। क्या इस मार्ग का अन्त नहीं है? क्या मेरा सुमन गौरी पर्वत के शिखर के उस पार लगातार पश्चिम की ओर ही चलता जायगा, जहाँ सूर्य डूब रहा है, प्रकाश डूब रहा है और प्रत्येक वस्तु डूब रही है?

रणजित्—(मन्त्री से) ऐसा प्रतीत होता है कि—

मन्त्री—हाँ महाराज, यह बात उस बाँध के बनाने से ही सम्बन्ध रखती है।

रणजित्—(अम्बा से) तुम खेद मत करो। में जानता हूँ कि पृथिवी में जो सब की अपेक्षा चरम दान है, उसे आज तुम्हारे पुत्र ने पा लिया है।

अम्बा—यदि ऐसा होता तो वह उस दान को सायंकाल के समय मेरे पास अवश्य लाता। क्योंकि मैं उसकी माता हूं।

रणजित्—वह लायेगा। अभी तो वह सायंकाल आया ही नहीं है।

अम्बा—ईश्वर करे कि तुम्हारा वचन सत्य हो। मैं मन्दिर को जाने वाले इस मार्ग पर उसकी प्रतीक्षा करूँगी। बेटा सुमन!

(जाती है।)

[पास ही एक झाड़ की छाया में कुछ विद्यार्थियों के साथ उत्तर-कूट के एक अध्यापक का प्रवेश]

अध्यापक—अरे ! अब मैं समझा कि इन दुष्ट लड़कों को अच्छी तरह बेंतों से ठीक करना चाहिये । लड़को, खूब ज़ोर से बोलो—"जय राजराजेश्वर की ।"

विद्यार्थीगण—जय राजरा...

अध्यापक—(पास खड़े हुए एक दो लड़कों को चपतें मार कर)—जेश्वर !

विद्यार्थीगण—जेश्वर !

अध्यापक—श्री श्री श्री श्री श्री—

विद्यार्थीगण—श्री श्री श्री—

अध्यापक—(धक्का मार कर) पाँच बार ।

विद्यार्थीगण—पाँच बार ।

अध्यापक—अरे अभागे बन्दरो, बोलो श्री श्री श्री श्री श्री

विद्यार्थीगण—श्री श्री श्री श्री श्री

अध्यापक—उत्तरकूटाधिपित की जय—

विद्यार्थीगण—उत्तरकूटा—

अध्यापक—धिपति की—

विद्यार्थीगण—धिपति की—

अध्यापक—जय ।

विद्यार्थीगण—जय ।

रणजित्—तुम कहां जाते हो ?

अध्यापक—आज महाराज राजकीय इञ्जीनियर को विशेष सम्मान वितरण करेंगे । मैं उसी हर्षोत्सव में भाग लेने के लिये

अपने विद्यार्थियों को ले जा रहा हूं। मैं चाहता हूँ कि मेरे विद्यार्थी उत्तरकूट के किसी भी गौरवपूर्ण उत्सव में भाग लेने से वञ्चित न रहें और छुटपन से ही अपने देश का गौरव करना सीखें।

रणजित्—क्या ये लड़के जानते हैं कि विभूति ने क्या किया है।

विद्यार्थीगण—(ताली बजाते और कूदते हुए) हाँ, हाँ, हम जानते हैं कि शिवतराई की प्रजा के पीने का पानी रोक दिया है।

रणजित्—उसने पानी क्यों रोक दिया है?

विद्यार्थीगण—उन्हें तंग करने के लिये।

रणजित् क्यों?

विद्यार्थीगण—कारण कि वे बुरे हैं।

रणजित्—क्यों बुरे हैं?

विद्यार्थीगण—ओह, वे बहुत ही बुरे हैं, बहुत ही खराब हैं, यह सभी जानते हैं।

रणजित्—क्या तुम नहीं जानते कि वे क्यों बुरे हैं?

अध्यापक—कहाँ महाराज, ये अवश्य जानते हैं। विद्यार्थियो से, तुम्हें क्या हो गया? कूढ़ मगज लड़को, क्या तुम्हें नहीं याद रहा? देखो तुम्हारी पुस्तकों में—अरे तुम्हारी पुस्तकों में-(धीमी आवाज़ से) कहो, उनका धर्म गन्दा है!

विद्यार्थीगण—हाँ, हाँ, उनका धर्म बहुत ही गन्दा है।

अध्यापक—और वे हमारे समान नहीं हैं। लड़को! जवाब

दो, क्या तुम भूल गये ? (नाक की ओर संकेत करता है ।)

लड़के—हाँ, उनकी नाक ऊँची नहीं होती ।

अध्यापक—ठीक तुम उस सिद्धान्त को जानते हो जिसे हमारे गणाचार्य (प्रोफेसर) ने सिद्ध कर दिया है। अच्छा, बोलो ऊँची नाक क्या बतलाती है ?

विद्यार्थीगण—जाति की उच्चता ।

अध्यापक—ठीक, बहुत ठीक। और उच्च जातियों का काम क्या है ? वे क्या करती हैं ? बोलो, बोलो। वे सारे संसार पर—हाँ कहो, सारे संसार पर विजय प्राप्त करती हैं। क्यों न ?

विद्यार्थीगण—हाँ, वे सारे संसार को जीतती हैं।

अध्यापक—क्या उत्तरकूट का आज तक कभी किसी युद्ध में एक बार भी पराजय हुआ है ?

विद्यार्थीगण—नहीं।

अध्यापक—तुम सब को पता है कि हमारे महाराज के दादा महाराज प्रागजित् ने केवल २६३ सिपाही लेकर दक्षिणी बर्बरों के ३१,७५६ सिपाही भगा दिये थे ? क्यों सच है न ?

विद्यार्थीगण—जी हाँ, बिल्कुल सच है।

मन्त्री—अच्छा, अब आप लोग जा सकते हैं।

(सब का प्रस्थान)

[राजकुमार संजय के साथ युवराज अभिजित् का प्रवेश ।]

सञ्जय—मैं नहीं समझ सकता कि आप राजमहल को छोड़ कर क्यों जा रहे हैं ?

अभिजित्—तुम इसे पूरी तरह नहीं जान सकते। मैं इस बात को हृदय में धारण करके ही इस पृथ्वी पर आया हूं कि मेरे जीवन का स्रोत राजमहल के पत्थरों को हटा कर चला जायगा।

संजय—हम लोग जानते हैं कि आप इधर कुछ दिनों से बहुत अशान्त हो रहे हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि वह बन्धन, जो आपको हमारे साथ जोड़े हुए था, शनैः शनैः ढीला हो रहा है। क्या अब वह सर्वथा टूट गया ?

अभिजित्—संजय, गौरी की चोटी पर सूर्यास्त का दृश्य देखो। मानो कोई अग्निमय पक्षी बादलों के पंख फैलाये हुए रात्रि की ओर उड़ा जा रहा है। अस्तकालीन सूर्य ने मेरी इस पथयात्रा का चित्र आकाश में अंकित कर दिया है।

संजय—युवराज, मुझे तो यह दृश्य बिल्कुल भिन्न रूप से दीखता है। देखो, यन्त्र का शिखर सूर्यास्त मेघ की छाती फाड़ कर खड़ा है। मानो उड़ते हुए पक्षी की छाती में बाण घुस गया है और वह अपने पंख लटका कर रात्रि के गढ़े में गिर रहा है। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। अब आराम का समय है! चलो, राजमहल में चलो।

अभिजित्—जहाँ पर कोई 'बाधा' हो, वहाँ आराम कैसे मिल सकता है ?

संजय—राजमहल में आपके लिए कोई 'बाधा' है? इतने दिनों के बाद उसे आपने कैसे जाना?

अभिजित्—मुझे 'बाधा' का पता तब लगा, जब मैंने सुना कि उन्होंने 'मुक्तधारा' को बाँध दिया है।

(बटु का प्रवेश)

बटु—उन्होंने मुझे नहीं जाने दिया, मार कर लौटा दिया।

अभिजित्—बटु, तुम्हें यह क्या हो गया? तुम्हारे माथे से तो खून बह रहा है।

बटु—मैं उन्हें सावधान करने निकला था। मैंने उनसे कहा था कि "खबरदार, इस रास्ते मत जाना, लौट जाओ!"

अभिजित्—क्यों? क्या हुआ है?

बटु—राजकुमार, क्या तुम्हें पता नहीं है कि आज वे लोग यन्त्र की वेदी पर तृष्णा राक्षसी का अभिषेक करेंगे और उसके आगे मनुष्यों की बलि चढ़ाई जायगी।

सञ्जय—यह तुम क्या कह रहे हो?

बटु—वे इस वेदी की नींव रखते समय मेरे दो पौत्रों का खून बहा चुके हैं। मैंने सोचा था कि यह पाप की वेदी अपने पाप के बोझ से ही गिर कर चूर हो जायगी, परन्तु अब तक तो यह हुआ नहीं। भैरव देव अब भी निन्द्रा से नहीं जागे।

अभिजित्—वह अवश्य चूर हो जायगी, अब समय आगया है।

बटु—(पास आकर कान में कहता है) तो आपने भैरव का आह्वान् अवश्य सुना होगा ?

अभिजित्—हाँ, मैंने सुना है।

बटु—सर्वनाश ! तब क्या आपका बचाव नहीं हो सकता ?

अभिजित्—नहीं, नहीं हो सकता।

बटु—क्या आप मेरे घाव से बहते हुए रक्त को नहीं देखते ? मेरा सारा शरीर धूल मिट्टी से गन्दा हो रहा है। क्या आप सहन कर सकेंगे, जब आपका हृदय विदीर्ण हो जायगा ?

अभिजित्—भैरव की कृपा से मैं सह सकूँगा।

बटु—जब सब लोग आपके शत्रु हो जावेंगे और स्वतः आप के इष्टजन भी आप को धिक्कारेंगे ?

अभिजित्—सहना ही होगा।

बटु—तब तो फिर कोई भय नहीं है।

अभिजित्—नहीं, कोई भय नहीं है।

बटु—वाह वाह ! तब तो इस बटु को याद रखना। मैं भी इसी मार्ग पर चल रहा हूँ। आप मुझे इस रक्त के तिलक से—जिसे स्वतः भैरव ने मेरे माथे पर लगा दिया है—अन्धकार में भी पहिचान सकेंगे।

(बटु जाता है)

[राजा के पहरेदार उद्धव का प्रवेश]

उद्धव—(युवराज से) श्रीमान् ! आपने नन्दी घाटी का मार्ग क्यों खोल दिया ?

अभिजित्—शिवतराई के लोगों को नित्य के दुर्भिक्षों से बचाने के लिए।

उद्धव—हमारे महाराज दयालु हैं। वे तो उनकी सहायता के लिए सदा तैयार रहते हैं।

अभिजित्—दायें हाथ से कृपणता के साथ दान का द्वार बन्द करके बायें हाथ से वदान्यता दिखाना कोई अर्थ नहीं रखता। इसलिए मैंने खाद्य सामग्री के आने जाने का मार्ग खोल दिया है। दया के ऊपर निर्भर रहने वाली दीनता को मैं नहीं देख सकता।

उद्धव—महाराज कहते हैं कि आपने नन्दी घाटी के प्राकार को तोड़ कर उत्तरकूट के भोजन-भण्डार की जड़ हिला दी है।

अभिजित्—मैंने उत्तरकूट को शिवतराई के अन्न पर आश्रित रहने की दुर्गति से सदा के लिए बचा लिया है।

उद्धव—यह आपने बड़े दुस्साहस का काम किया है। महाराज तक यह समाचार पहुँच चुका है, इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कह सकता। यदि बन सके, तो आप इस स्थान को छोड़ दीजिए। मेरे लिए यह अच्छा न होगा कि मुझे कोई इस मार्ग में आप से बातें करते हुए भी देख ले। (जाता है।)

[अम्बा का प्रवेश।]

अम्बा—सुमन! मेरे प्यारे! क्या तुम में से कोई भी उस मार्ग से नहीं गया, जिससे कि वे मेरे सुमन को ले गये थे?

अभिजित्—वे तुम्हारे पुत्र को ले गये हैं?

अम्बा—हाँ, उस पश्चिम की ओर, जहाँ सूर्य डूबता है और दिन का अन्त हो जाता है।

अभिजित्—मेरी यात्रा भी उसी मार्ग की ओर है।

अम्बा—तो मुझ दुखिनी की एक बात याद रखना। जब वह तुम्हें मिले तो उससे कहना कि तेरी माँ तेरी प्रतीक्षा कर रही है।

अभिजित्—हाँ मैं कह दूंगा।

अम्बा—तुम चिरञ्जीवी होओ। सुमन, प्यारे सुमन!

(जाती है)

[भैरव के पुजारियों का गाते हुए प्रवेश।]

जय भैरव, जय शंकर,
जय जय जय प्रलयङ्कर।
जय संशय-भेदन, जय बन्धन-छेदन
जय संकट-संहर,
शंकर, शंकर !

(चले जाते हैं।)

[सेनापति विजयपाल का प्रवेश]

विजयपाल—युवराज, राजकुमार, मेरे नम्र प्रणाम को स्वीकार करो। मैं राजा के पास से आया हूँ।

अभिजित्—उनकी क्या आज्ञा है ?

विजयपाल—वह आज्ञा मैं एकान्त में सुनाऊँगा।

संजय—(अभिजित् का हाथ दबा कर) एकान्त में क्यों ? क्या मुझसे भी छिपा कर ?

विजयपाल—मुझे ऐसी ही आज्ञा मिली है। युवराज, मेरी प्रार्थना है कि आप एक वार राजशिविर में पदार्पण करें।

संजय—मैं भी इन के साथ चलूँगा।

विजयपाल—नहीं, ऐसा करना महाराज की इच्छा के विरुद्ध है।

संजय—अच्छा, तो मैं इस मार्ग पर ही खड़ा रह कर प्रतीक्षा करूँगा।

(अभिजित् को लेकर विजयपाल शिविर की ओर जाते हैं।)

[वैरागी का प्रवेश]

गान

वह तो अब फिर फिरि है ना रे,
फिरि है ना रे, फिरि है ना रे!
परी नाव आंधी के मुख में—
फेर किनारे भिरि है ना रे!
कौन बावरे ने धरि टेर्यो,
रोदन पाछें तजि मुख फेर्यो,
अब वह तेरे बाहुपासतें—
घिरि है ना रे; घिरि है ना रे!

[क्षण भर बाद विजयपाल का प्रवेश।]

संजय—युवराज कहाँ हैं?

विजयपाल—वे शिविर में क़ैद हैं।

संजय—युवराज क़ैद कर लिये गये! इतनी बड़ी धृष्टता!

विजयपाल—देखिए, महाराज का यह आदेश-पत्र है।

संजय—यह षड्यन्त्र किसने रचा है? मुझे एक बार उस के पास जाने दो।

विजयपाल—क्षमा कीजिये, आप नहीं जा सकते।

संजय—अच्छा, तो मुझे भी क़ैद कर लो। मैं विद्रोही हूं।

विजयपाल—नहीं, मुझे ऐसी आज्ञा नहीं है।

संजय—अच्छा, तो मैं स्वयं चलकर उनसे आज्ञा ले लूँगा। (कुछ चलकर फिर लौट आता है) हां विजयपाल, युवराज को यह श्वेत कमल मेरी ओर से भेंट कर देना।

(दोनों जाते हैं।)

[उत्तरकूट के नागरिकों के समूह का प्रवेश]

पहला ना०—आज के उत्सव में और तो सब कुछ ठीक हुआ, परन्तु उस लुहार के लड़के विभूति को राजा ने एकदम क्षत्रिय बना दिया, यह कुछ—

दूसरा ना०—अजी, यह अपने घर का झगड़ा है। जब वह लौट कर अपने गांव जायगा, तब देख सुन लेंगे। इस समय तो हमें पुकारना चाहिये—"यन्त्रराज विभूति की जय!"

तीसरा ना०—जिसने क्षत्रिय के अस्त्र और वैश्य के यन्त्र का मिलाप कर दिया, उस यन्त्रराज विभूति की जय!

पहला ना०—ओहो! यहां तो कुछ शिवतराई के भी मनुष्य आये हैं।

दूसरा ना०—यह तुम ने कैसे जाना?

पहला ना०—क्या तुम उनके कनटोपे नहीं देखते ? देखो तो वे कैसे अद्‌भुत जँचते हैं । ऐसा मालूम होता है कि मानो किसी ने ऊपर से थप्पड़ मारकर उन की बाढ़ ही रोक दी हो ।

दूसरा ना०—और क्यों जी, इतने देश हैं उन सब में से केवल इसी देश के लोग क्यों यह कानों को ढक देने वाली टोपी पहिनते हैं ? क्या ये सोचते हैं कि कान बनाना विधाता की भूल है ?

पहला ना०—उन्होंने अपने कानों पर एक बांध बांध दिया है, जिससे कि थोड़ी बहुत अक्ल जो उनके अन्दर है, वह भी कहीं निकल न जाय ! (सब के सब हँसते हैं ।)

तीसरा ना०—नहीं, यह इसलिये है कि कहीं कोई समझ की बात उनके अन्दर न घुस जाय ! (हास्य)

पहला ना०—कहीं कोई उत्तरकूट का कान खींचने वाला भूत उनका पीछा न करने लगे ! (हँसता है ।) अरे शिवतराई के गंवारो, तुम कर क्या रहे हो ? चुपचाप क्यों खड़े हो ?

तीसरा ना०—तुम नहीं जानते कि आज हमारा बड़ा दिन है । आओ और हमारे साथ पुकारो—"यन्त्रराज विभूति की जय ।"

पहला ना०—फिर भी चुप हो ! क्या तुम्हारे गले बन्द हो गये हैं ? पुकारो ! जान पड़ता है कि गर्दन दबाये बिना आवाज़ नहीं निकलेगी । बोलो—"यन्त्रराज विभूति की जय !"

गणेश—क्यों जी, 'विभूति की जय' क्यों बोलें ? उसने किया क्या है ?

पहला ना०—देखो तो यह क्या कहता है—"उसने किया क्या है !" अभी तक विभूति के अद्भुत कार्य की खबर भी इन तक नहीं पहुँची ? देखा, यह कान ढकने वाली टोपी का ही प्रताप है !

तीसरा ना०--तुम पूछते हो कि उसने क्या किया है ? जानते नहीं कि तुम्हारी प्यास बुझाने वाला पानी उसी के हाथ में है ? यदि वह दया न करे तो तुम उसी तरह सूख कर मर जाओगे, जिस तरह सूखा पड़ने पर मेंढक मर जाते हैं ।

दूसरा शि० ना०—हमारा पानी विभूति के हाथ में है ? क्या वह एकदम ईश्वर हो गया ?

दूसरा उ० कू० ना०—उसने ईश्वर को उसके काम से छुट्टी दे दी है । अब वह ईश्वर का काम स्वयं करेगा ।

पहला शि० ना०—उसके काम का कोई नमूना दिखा सकते हो ?

पहला उ० कू० ना०—हाँ, 'मुक्तधारा' का वह बाँध मौजूद है।

(शिवतराई के सारे नागरिक ज़ोर से हँसते हैं ।)

दूसरा उ० कू० ना०--क्या तुम इसे मज़ाक समझते हो ?

गणेश—मज़ाक नहीं तो और क्या है ? वह बेचारा मुक्तधारा को बाँध देगा ? जिसे साक्षात् भैरव ने अपने हाथ से दिया है, उसे वह तुम्हारा लुहार का लड़का छीन लेगा ?

पहला उ० कू० ना०—अरे! अरे अपनी आंखों से ही क्यों नहीं देख लेते? वह आकाश में क्या दिखाई देता है?

दूसरा शि० ना०—अरे बाप रे! यह क्या है?

तीसरा शि० ना०—यह तो लोहे का एक बड़ा भारी टिड्डा-सा जान पड़ता है, मानो आकाश में छलांग मारने जा रहा है!

दूसरा उ० कू० ना०—वह टिड्डा अपनी टांग से तुम्हारे पानी को रोक देगा।

गणेश—इन सब फिजूल बातों को रहने दो। एक दिन तुम कहोगे कि यह लुहार का लड़का इस टिड्डे के डैनों पर सवार होकर चाँद पकड़ने जायगा।

पहला उ० कू० ना—यह इनके कनटोपे की खूबी है। सुनकर भी नहीं सुनना चाहते और इसी से मरते हैं!

पहला शि० ना—हम ने प्रतिज्ञा की है कि मरकर भी न मरेंगे।

तीसरा उ० कू० ना०—प्रतिज्ञा बहुत अच्छी की है, पर यह तो कहो कि तुम्हें बचावेगा कौन?

गणेश—क्या तुमने हमारे देवता को नहीं देखा है? हमारे धनंजय वैरागी प्रत्यक्ष देवता हैं। उनका एक शरीर मन्दिर में और दूसरा बाहर है।

तीसरा उ० कू० ना—कनटोपे लगाये हुए इन आदमियों की मूर्खता तो देखो। इन्हें मरने से कोई नहीं बचा सकता।

(उत्तरकूट के नागरिक बाहर जाते हैं।)

[धनंजय का प्रवेश]

धनंजय—मूर्खो ! तुम क्या कह रहे थे ? क्या तुम्हें मौत से बचाने का भार मेरे ऊपर है ? तब तो तुम अपने को सात बार मरा समझो।

गणेश—उत्तरकूट के लोग हमसे धमका कर कह गये हैं कि विभूति ने बाँध बाँधकर मुक्तधारा का पानी रोक दिया है।

धनंजय—बांध बना दिया, ऐसा कहा है ?

गणेश—हाँ बाबा।

धनंजय—उनकी सब बात सुन ली है न ?

गणेश—वह क्या सुनने की बात थी ? हमने तो हँस कर उड़ा दी।

धनंजय—क्या तुम सब ने अपने कान अकेले मेरे ही जिम्मे कर दिये हैं ? तुम सब के सुनने की बात भी मुझे ही सुननी होगी ?

तीसरा शि० ना०—उस में सुनने की बात ही क्या थी !

धनंजय—क्या किसी दुरन्त शक्ति को, चाहे वह अन्दर की हो या बाहर की, नियन्त्रित कर लेना कोई छोटी सी बात है ?

गणेश—पर इसी से क्या वे हमारी प्यास बुझाने वाले पानी को रोक लेंगे ?

धनंजय—यह दूसरी बात है। भैरव इसे कभी न होने देंगे। तुम लोग ठहरो, मैं जाता हूँ और इस विषय में पता लगाकर आता हूँ। यह जगत् वाणीमय है। उसकी जिस दिशा से सुनना

बन्द किया जायगा, उस दिशा से ही मृत्यु का बाण आकर हमारे ऊपर पड़ेगा। (प्रस्थान)

[राजा रणजित् का मन्त्री सहित प्रवेश ।]

सब—(राजा से) महाराज की जय हो !

गणेश—हम आपके पास एक प्रार्थना ले कर आये हैं।

रणजित्—क्या ?

सब—हम युवराज को चाहते हैं।

रणजित्—कहते क्या हो ?

पहला शि० ना०—हां, हम उन्हें शिवतराई वापिस ले जायँगे।

रणजित्—और तब आनन्द में मस्त होकर तुम कर (टैक्स) देना भूल जाओगे।

सब—हम तो बिना अन्न के भूखों मर रहे हैं।

रणजित्—तुम्हारा सरदार कहाँ है ?

दूसरा शि० ना०—(गणेश की ओर संकेत करके) यही तो हमारे गणेश सरदार हैं।

रणजित्—नहीं,यह नहीं, तुम्हारा वह वैरागी कहां है ?

गणेश—वे आ रहे हैं।

[धनंजय का प्रवेश]

रणजित्—तुमने इस समस्त प्रजा को पागल बना दिया है।

धनंजय—हां महाराज, और स्वयं भी पागल हो गया हूँ।

गीत—

गलियों गलियों हमें घुमाता,
पागल कर पागल वह कौन ?
मोहन सुर से, किस समीर में,
बजा रहा है क्या, यह कौन ?
गई गई, रे ! सारी वेला,
पागल की यह कैसी खेला !
आकुल करता है पुकार कर,
नहीं पकड़ में आता है !
वन वन उसे खोजते, रोते,
किस अग्नि से जलाता है !

रणजित्—इस तरह के पागलपन से तुम असली बात को नहीं दबा सकोगे। बोलो, कर दोगे या नहीं ?

धनंजय—नहीं महाराज, नहीं देंगे।

रणजित्—नहीं दोगे ? इतनी बड़ी हिमाक़त ?

धनंजय—जो चीज़ आपकी नहीं है, वह आपको नहीं दी जा सकती।

रणजित्—हमारी नहीं है ?

धनंजय—जो हमारे खाने से बचता है, उसी अन्न पर आपका अधिकार है, हमारे भूख के अन्न को आप नहीं ले सकते।

रणजित्—क्या तुम ही हमारी प्रजा को कर देने से रोकते हो ?

धनंजय—हां वे लोग तो भय के मारे दे देना चाहते हैं, परन्तु मैं उन्हें रोक देता हूं कि अपने प्राण उसी को दो, जिस ने तुम्हें प्राण दिये हैं।

रणजित्—तुम्हारे भरोसे और ढाढ़स ने ही उन लोगों के भय को दबा रक्खा है, परन्तु याद रक्खो कि बाहर का यह भरोसा यदि कहीं से ज़रा भी फट गया, तो भीतर का भय सात गुने ज़ोर से भड़क उठेगा। उस समय ये बुरी तरह मरेंगे। देखो वैरागी, तुम्हारे कपाल में दुख है।

धनंजय—जो दुख कपाल में था, उसे हमने छाती पर बिठा लिया है और दुखों के ऊपर रहने वाला उसी स्थान पर निवास करता है।

रणजित्—(प्रजा के प्रति) हम तुम लोगों को आज्ञा देते हैं कि तुम शिवतराई को लौट जाओ और वैरागी, तुम यहीं रहो।

सब—जब तक हम लोगों के शरीर में प्राण हैं, तब तक यह नहीं हो सकता।

रणजित्—मन्त्री, वैरागी को पकड़ लो !

मन्त्री—महाराज—(चुप हो जाता है।)

रणजित्—क्या यह मेरी आज्ञा तुम्हें पसन्द नहीं है ?

मन्त्री—शासन का भीषण यंत्र तो तैयार हो गया है, उसके

ऊपर यदि आप भय और चढ़ाने जायँगे तो वह सब टूट फूट कर नष्ट हो जायगा।

प्रजाजन—यह हम से नहीं सहा जायगा।

धनंजय—(प्रजा से) मैं कहता हूँ कि तुम जाओ, लौट जाओ!

शिवतराई का एक ना०—बाबा जी, क्या आपने नहीं सुना कि हम युवराज को भी खो चुके हैं?

द्वि० ना०—अच्छा, बाबा जी, हम लोग चले; किन्तु—

धनंजय—'किन्तु' नहीं, अपना सिर ऊँचा रक्खो और बिल्कुल 'निर्ष्किंतु' होकर जाओ!

सब—बहुत अच्छा, तो हम जाते हैं।

(धीरे धीरे जाते हैं।)

धनंजय—क्या इसी का नाम जाना है? जल्दी जाओ! जल्दी!

गणेश—जाते हैं, किन्तु हमारी सारी शक्ति और बुद्धि रह जायगी, वहीं पड़ी हुई। (जाते हैं।)

(धनंजय को लेकर उद्धव जाता है।)

रणजित्—मन्त्री, अभिजित् को बन्दीगृह में जाकर देख आओ, यदि वह अपने किये हुए कार्य के लिए अनुतप्त हो तो—

मन्त्री—महाराज, यह उचित नहीं है। आप को स्वयं ही जाकर—

रणजित्—नहीं नहीं, उसने अपने देशवासियों के प्रति, राज्य के प्रति विश्वासघात किया है। जब तक कि वह अपना अपराध

स्वीकार न करे मैं उसका मुँह न देखूँगा। मैं राजधानी को वापस जाता हूं, वहां मुझे समाचार भेजना। (प्रस्थान)

(उत्तरकूट के नागरिकों का प्रवेश।)

प्र० नागरिक—हमें अपनी बात पर दृढ़ रहना चाहिए। चलो, राजा के पास चलें।

द्वि० ना०—इससे क्या लाभ ? युवराज राजा के हृदय का हार है। वे उसके अपराध का न्याय नहीं कर सकेंगे, उलटे हम लोगों पर ही नाराज़ होंगे।

प्रथम नागरिक—यदि राजा उसे दण्ड न देगा, तो हम लोग देंगे।

द्वि० नागरिक—क्या करोगे ?

प्र० ना०—उसे यहाँ जगह नहीं मिल सकती। उसे उसी रास्ते से निकल जाना चाहिये, जो उसने नन्दी घाटी पर खोला है !

तृ० ना०—परन्तु अभी उस चौबुआ गाँव के आदमी ने कहा है कि वह इस समय शिवतराई में नहीं है और न राजमहल में ही उसका कोई पता है।

प्र० ना०—तब तो निश्चय उसे राजा ने कहीं छिपा दिया है।

तृ० ना०—छिपा दिया है ? हम दीवालों को तोड़ डालेंगे और उसे बाहर निकाल लावेंगे।

प्र० नागरिक—हम राजमहल में आग लगा देंगे।

(मन्त्री और उद्धव का प्रवेश)

प्र० नागरिक—(मन्त्री से) तुम हम से लुका-चोरी का खेल तो नहीं खेलना चाहते ? राजकुमार को बाहर लाओ ।

मन्त्री—अरे भैया, मैं उसे बाहर लाने वाला कौन हूँ ?

द्वि० ना०—यह तुम्हारी ही सम्मति से हुआ होगा, परन्तु हम कहे देते हैं कि यह नहीं हो सकता । हम उसे खींचकर बाहर निकाल लावेंगे ।

मन्त्री—तो इस राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेकर जाओ और उसे राजा के कारागार में से निकाल लाओ ।

तृ० ना०—राजा के कारागार में से ?

मन्त्री—हाँ, राजा ने ही उन्हें क़ैद कर रक्खा है ।

सब—महाराज की जय, उत्तरकूट की जय !

दू० नागरिक—चलो, हम लोग कारागार चलें और वहां—

मन्त्री—वहां जाकर क्या करोगे ?

दू० ना०—हम विभूति की फैंकी हुई माला के फूल निकाल कर उसके तागे को युवराज के गले में डाल आवेंगे ।

(उत्तरकूट के नागरिक चले जाते हैं ।)

मन्त्री—अब मैं समझा कि राजा ने युवराज को क्यों अपने शिविर में बन्दी किया है ।

उद्धव—क्यों किया है ?

मन्त्री—युवराज को लोगों के हाथों से बचाने के लिए । परन्तु

अवस्था बिगड़ती जाती है। उत्तेजना प्रतिक्षण भयानक रूप धारण कर रही है।

(प्रस्थान ।)

[राजा के चाचा विश्वजित् का प्रवेश ।]

विश्वजित्—कौन है ? क्या उद्धव है ?

उद्धव—हाँ, महाराज !

विश्वजित्—मैं अंधेरा होने की प्रतीक्षा कर रहा था। क्या तुम्हें मेरा पत्र मिल गया ?

उद्धव—हाँ।

वि० जि०—क्या तुमने मेरी बात मानी ?

उद्धव—आपको थोड़े ही समय में पता लग जायगा, परन्तु-

विश्वजित्—अपने मन में सन्देह न करो। महाराज उसे स्वयं छोड़ने को तैयार नहीं हैं। परन्तु यदि कोई दूसरा मनुष्य बिना महाराज को बताये, किसी उपाय से, उसे स्वतन्त्र कर देगा, तो इस संकट से वे बच जावेंगे, उनकी रक्षा हो जायगी।

उद्धव—परन्तु वे उस आदमी को क्षमा न करेंगे जो यह कार्य करेगा।

विश्वजित्—मेरे सिपाही तुम्हारे रक्षकों को कैद कर के ले जावेंगे। उत्तरदायित्व मेरा होगा।

[नेपथ्य में—आग, आग !]

दूसरी ओर से—आग, आग !

उद्धव—यह लो, हो गया। उन्होंने रसोई के शिविर में, जो

कैदखाने के समीप है, आग लगा दी। यही मेरे लिए अवसर है कि मैं धनंजय और युवराज को मुक्त कर दूँ।

[बाहर जाता है और कुछ ही देर पीछे युवराज अंदर आते हैं।]

अभिजत्—(विश्वजित् से) दादाजी ! आप यहाँ कैसे आए?

विश्वजित्—मैं तुम्हें क़ैद करने के लिए आया हूँ, मोहनगढ़ चलना होगा।

अभिजित्—आज मुझे कोई कैद नहीं कर सकता—न क्रोध, न प्रेम। आप लोग क्या यह सोचते हैं कि मैंने उस शिविर में आग लगवाई है? नहीं, यह आग मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। यह तो किसी न किसी तरह लगती ही। अब मुझे कैदी बन कर रहने के लिए अवकाश नहीं है।

विश्वजित्—क्यों बेटा ! इस समय तुम्हें क्या काम है?

अभिजित्—मुझे अपने जन्म काल का ऋण चुकाना है। झरने का प्रवाह मेरी धात्री (धाय) है, मैं उसका बन्धन तोड़ूँगा उसे स्वतन्त्र करूँगा।

विश्वजित्—उसके लिए बहुत समय है, आज नहीं।

अभिजित्—मैं यह बात तो जानता हूँ कि समय अब ही आया है; परन्तु यह कोई नहीं जानता कि वह फिर भी आएगा या नहीं

विश्वजित्—हम लोग भी तुम्हारा साथ देंगे।

अभिजित्—नहीं, यह मेरे हृदय की पुकार है जो आप लोगों तक कभी नहीं पहुँची है।

विश्वजित--शिवतराई के लोग—जो तुम्हें प्यार करते हैं—बड़ी उत्सुकता से तुम्हारे काम में हाथ बटाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्या तुम उन्हें नहीं पुकारोगे?

अभिजित्--यदि यह पुकार उन तक भी पहुँची होती तो वे मेरी प्रतीक्षा कभी न करते। मेरी पुकार उन्हें केवल उलटे रास्ते ले जाएगी।

विश्वजित—बेटा, अब तो अँधेरा हो आया है।

अभिजित्--जहाँ से पुकार हुई है, उस ओर से प्रकाश भी आवेगा।

विश्वजित्—मैं तुमको तुम्हारे मार्ग से हटाने की शक्ति नहीं रखता, यद्यपि तुम अन्धकार में कूद रहे हो। मैं ईश्वर पर विश्वास रखता हूँ कि वह तुम्हारा मार्गदर्शक होगा। मैं तुम्हें उसी प्रभु के हाथों में सौंपता हूं। केवल एक आश्वासन-वाक्य सुन कर जाना चाहता हूं। मुझसे कहो कि हम फिर भी मिलेंगे।

अभिजित्—अपने मन में निश्चय रखिए कि हम अलग नहीं हो सकते।

(दोनों भिन्न-भिन्न दिशाओं को जाते हैं।)

[रणजित और मंत्री का प्रवेश]

मन्त्री—महाराज! कैम्प उजड़ गया और उसका बहुत-सा हिस्सा जल गया। वहां जो थोड़े से पहरेदार थे वे—

रणजित्—पहरेदार कहीं भी हों उनकी कोई परवाह नहीं; मैं जानना चाहता हूं कि अभिजत् कहाँ है?

कङ्कर—महाराज, हम युवराज को दण्ड दिलाना चाहते हैं।

रणजित्—क्या मैंने कभी किसी व्यक्ति को—जो दण्ड के योग्य है—दण्ड देने में तुम्हारी प्रार्थना की प्रतीक्षा की है?

कङ्कर—खोजने पर भी उन्हें न पा सकने के कारण लोगों के मन में सन्देह हो गया है।

रणजित्—क्या! सन्देह! किसके सम्बन्ध में?

कङ्कर—महाराज, मुझे क्षमा करें। आपको अपनी प्रजा के मन की अवस्था अवश्य जाननी चाहिए। युवराज के मिलने में जितनी ही देरी होती है, इन लोगों का अधैर्य उतना ही बढ़कर इस सीमा तक बढ़ता जाता है कि यदि वे उन्हें किसी तरह पा सके, तो फिर दण्ड देने के लिए आपकी ज़राभी प्रतीक्षा न करेंगे।

विभूति—महाराज के आदेश की अपेक्षा किए बिना ही मैंने नन्दी घाटी के टूटे हुए कोट को फिर से बनाने का काम अपने ऊपर ले लिया है।

रणजित्—तुम यह काम मेरे ही ऊपर क्यों न छोड़ सके?

विभूति—आप पर इस प्रकार का सन्देह करना सर्वथा स्वाभाविक है कि युवराज द्वारा किए गए इस अपकीर्तिजनक कार्य में आपका भी गुप्त हाथ है।

मन्त्री—महाराज, जनता का मन एक ओर तो आत्म-प्रशंसा और दूसरी ओर क्रोध के कारण बहुत उत्तेजित होरहा है। अब आप अपने अधैर्य के द्वारा उनके अधैर्य को और भी उद्दाम करने क मौक़ा न दीजिए।

रणजित्—वहां वह कौन खड़ा है ? धनञ्जय वैरागी ?

धनञ्जय—मुझे यह जान कर खुशी है कि आपने मुझे भुला नहीं दिया।

रणजित्—तुम ज़रूर जानते हो कि अभिजित् कहाँ है।

धनञ्जय—नहीं। महाराज, मैं उस बात को कभी गुप्त नहीं रख सकता जिसका मुझे निश्चित पता हो, और इसीलिये मैं आफ़तों में फँस जाता हूँ।

रणजित्—तो फिर तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?

धनञ्जय—मैं यहां युवराज के आने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

(नेपथ्य में—सुमन! सुमन ! मेरे प्यारे सुमन ! अँधेरा हो आया, सर्वत्र अंधेरा हो गया !)

रणजित्—यह कौन पुकार रहा है ?

मन्त्री—यह वही पगली अम्बा है।

[अम्बा का प्रवेश]

अम्बा—कहां वह अभी तक तो नहीं लौटा !

रणजित्—तुम उसे क्यों ढूंढती हो ? उसका समय आ गया था, इसलिए उसे भैरव ने बुला लिया।

अम्बा—क्या भैरव चुपचाप बुला ही लेते हैं ? भैरव क्या कभी वापस नहीं करते ? चुपचाप ? रात के गहरे अन्धकार में ? सुमन, मेरे सुमन ! (जाती है।)

[दूत का प्रवेश]

दूत—शिवतराई से लोगों की एक बड़ी भारी भीड़ बढ़ी चली आ रही है।

विभूति—यह कैसे ? हमने तो उन्हें एकाएक आक्रमण करके पराजय और निरस्त्र करने की योजना की थी। हम में से कोई अवश्य विश्वासघाती है। जिसने जाकर उन्हें खबर दे दी है। कंकर, तुम्हारी मण्डली के सिवाय तो बहुत ही कम लोग इस भीतर की बात को जानते थे। फिर यह कैसे हुआ ?

कङ्कर—क्यों विभूति, क्या आप हम पर भी संदेह करते हैं ?

विभूति—संदेह करने की सीमा कहीं भी नहीं है।

कङ्कर—तो फिर हम लोग भी आप पर सन्देह करते हैं।

विभूति—हां, करो। सन्देह करने का तुम्हें अधिकार है। जो हो, समय आने पर इसका निर्णय हो जायगा।

रणजित—(दूत से) क्या तुम्हें पता है कि वे क्यों आ रहे हैं ?

दूत—उन्होंने सुना है कि युवराज कैद हो गए हैं, इसलिए उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि जैसे बनेगा, हम उन्हें खोजकर निकालेंगे। यहां से मुक्त करके वे उन्हें शिवतराई का राजा बनाना चाहते हैं।

विभूति—हम भी उसे ढूंढ़ रहे हैं और वे भी। देखना है कि वह किसके हाथ पड़ता है।

धनंजय—वह तुम दोनों के ही हाथ पड़ेगा, उसके मन में ज़रा भी पक्षपात नहीं है।

दूत—यह शिवतराई का नेता गणेश आ रहा है।

[गणेश का प्रवेश]

गणेश—(धनंजय से) बाबा जी, उनका पता तो लग जायगा।

धनंजय—हाँ, लगेगा क्यों नहीं।

गणेश—आप निश्चय करके कहते हैं?

धनंजय—हाँ, निश्चयपूर्वक कहता हूँ। ज़रूर लग जायगा…

रणजित्—अरे, तुम लोग किसे ढूँढ़ रहे हो?

गणेश—लो, ये तो स्वयं महाराज ही आ गये। राजन्, आपको उन्हें छोड़ देना पड़ेगा।

रणजित्—किसे?

गणेश—हमारे युवराज को। आपको तो उनकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु हमें उनकी बहुत आवश्यकता है—हम उन्हें चाहते हैं। क्या आप हम लोगों का सभी कुछ रोक रक्खेंगे? उन तक को भी?

धनंजय—अरे मूर्ख, तुम मनुष्य को नहीं पहिचानते। उन्हें बन्द कर रखने की शक्ति भला किस में है?

गणेश—हम उन्हें अपना राजा बना कर रक्खेंगे।

धनंजय—अवश्य रक्खेंगे। वे राजवेश धारण करके आवेंगे।

[पुजारियों का गाते हुए प्रवेश]

तिमिर—हृद्विदारण,
ज्वलदग्नि-निदारुण
मरुश्मशान-संचर,
शंकर ! शंकर !
वज्रघोषवाणी,
रुद्र, शूलपाणी,
मृत्युसिन्धु-संतर
शंकर ! शंकर !

[नेपथ्य में। (अम्बा)—मां पुकार रही है, सुमन ! माँ पुकार रही है ! लौट आओ ! सुमन ! लौट आओ !]

(दूर से एक आवाज़ सुनाई देती है)

विभूति—अरे वह क्या सुन पड़ता है ? काहे का शब्द है ?

धनंजय—यह अन्धकार की छाती का भीतरी अंश खिलखिलाकर हँस पड़ा है।

विभूति—आह ! चुप भी रहो! आवाज किस ओर से आरही है। बोलो तो ?

[नेपथ्य में—भैरवी की जय ! जय भैरवी !]

विभूति—(अपने सिर को पृथ्वी की ओर झुकाकर सुनते हुए) यह साफ़ साफ़ झरने की आवाज़ है।

धनंजय—नृत्य का आरम्भ हो गया है, यह उसके डमरू की पहली आवाज़ है।

विभूति—आवाज़ बढ़ती जाती है। बढ़ती ही जाती है।

कङ्कर—यही प्रतीत होता है कि—

नरसिंह—ऐसा मालूम होता है कि—

विभूति—हाँ, हाँ, इसमें सन्देह नहीं है। 'मुक्तधारा' वेग से बह पड़ी है। उसके बाँध को किसने तोड़ दिया?—अरे वह नहीं बचेगा।

(कङ्कर, नरसिंह और विभूति का तेज़ी से प्रस्थान।)

रणजित्—मन्त्री यह क्या मामला है?

धनञ्जय—बाँध टूटने के उपलक्ष्य में जो उत्सव होगा, यह उसी में शामिल होने के लिये पुकार हो रही है। (गाता है—)

बाजत डमरू बाजत झाँझ।
हिरदे में हो, हिरदे माँझ॥

मन्त्री—महाराज, यह तो शायद—

रणजित्—हाँ, यह शायद उसी का—

मन्त्री—उनके सिवाय और किसी का तो—

रणजित्—ऐसा साहस और किस में है?

धनञ्जय—(गाता है।—)

नाचत नाच चरन सहुलास।
प्रानन ढिग हो, प्रानन पास॥

रणजित्—यदि दण्ड देना है, तो मैं दण्ड दूंगा। किन्तु इन सब उन्मत्त प्रजाजनों के हाथ से—मेरा अभिजित्, देवताओं का प्यारा अभिजित्,—देवता उसकी रक्षा करें।

गणेश—बाबाजी, कुछ समझ में नहीं आता कि यह क्या हुआ है ?

जागत पहर, पहुरुआ दोय।
तारकमंडल झिलमिल होय॥

रणजित्—मुझे मानो यह उसकी पदध्वनि सुनाई देती है ! अभिजित् ! अभिजित् !

मन्त्री—मानो वही आ रहे हैं।

धनञ्जय—(गाता है—)

मरमनि पीर, पीर प्रतिसंध।
टूटत बन्धन, छूटत बंध॥

[संजय का प्रवेश।]

रणजित्—यह तो सञ्जय आ रहा है। सञ्जय, अभिजित् कहाँ है ?

संजय—'मुक्तधारा' का झरना उन्हें बहा ले गया। हम लोग उन्हें नहीं पा सके।

रणजित्—राजकुमार, तुम यह क्या कहते हो ?

संजय—युवराज ने मुक्तधारा के बाँध को तोड़ दिया !

रणजित्—समझ लिया। उसी मुक्ति के द्वारा उसने मुक्ति पा ली। झरने को मुक्त करके वह मुक्त हो गया। संजय, क्या वह तुम्हें अपने साथ ले गया था ?

संजय—नहीं, परन्तु मैंने समझ लिया था कि वे वहीं जायंगे और इसलिए मैं पहले ही चला गया और अन्धकार में उनकी

प्रतीक्षा करने लगा। परन्तु बात वहीं समाप्त हो गई। उन्होंने मुझे पीछे छोड़ दिया और आगे न जाने दिया।

रणजित्—क्या हुआ, सो ज़रा और भी स्पष्ट करके सुनाओ।

संजय—बाँध की बनावट में जो एक जगह कमज़ोरी थी, उसका पता उन्हें किसी प्रकार चल गया था। उसी जगह उन्होंने यन्त्रासुर पर चोट की और यन्त्रासुर ने उन्हें वह चोट तत्काल ही लौटा दी। तब 'मुक्तधारा' उनकी उस आहत देह को माता के समान अपनी गोद में ले कर चली गई।

गणेश—हम अपने युवराज को ढूँढ़ने के लिए निकले थे, सो क्या अब हम उन्हें न पा सकेंगे ?

धनंजय—तुमने युवराज को सदा के लिए पा लिया।

[भैरव के पुजारियों का गाते हुए प्रवेश]

जय भैरव, जय शङ्कर,
जय जय जय प्रलयङ्कर।
जय संशय-भेदन,
जय बन्धन-छेदन,
जय सङ्कट-संहर,
शङ्कर ! शङ्कर !
तिमिर-हृद्विदारण,
ज्वलदग्निनिदारुण,
मरुश्मशान-संचर,
शङ्कर ! शङ्कर !

वज्रघोषवाणी,

रुद्र, शूलपाणी,

मृत्युसिन्धु-संतर,

शङ्कर ! शङ्कर !

[यवनिका पतन]

भ ग वा न

(विष्णु प्रभाकर)

★

पात्र

शचीन्द्र—एक धनी और विचारक युवक ।

शोभना—शचीन्द्र की धर्मभीरु सुशिक्षिता पत्नी ।

हेमकला—शचीन्द्र के दूर के नाते की विधवा भाभी ।

★

भगवान

प्रथम दृश्य

(समय—प्रातःकाल लगभग सात बजे)

[शचीन्द्र का सुन्दर भवन। कई ड्योढ़ियों के बाद एक विशाल चौक। उसके चारों ओर बरामदे और कमरे। सब स्वच्छ, सुन्दर और सजे हुए। ऊपर भी उसी के अनुसार खुली छतें तथा कमरे। वहीं पर शचीन्द्र के बैठने का कमरा है, जो दोनों आधुनिक और पुरातन रीतियों से बड़ी सादगी से सजाया गया है। एक ओर फर्श पर क़ालीन बिछा है, गावदार तकिये हैं और बीच में छोटी छोटी चौकियों पर फूलदान हैं।

दूसरी ओर टीकवुड की डैक्स तथा दफ्तरी कुरसियां हैं। एक सोफा सेट भी यथास्थान बिछा है। कमरे के तीन दरवाजे छत पर खुलते हैं। दाहिनी ओर एक दरवाज़ा शोभना के कमरे में जाता है। बाईं ओर का दरवाज़ा सदा बन्द रहता है।

दीवारों पर चार पांच फोटो पेंटिंग हैं। दो तीन कैलण्डर तथा एक बढ़िया घड़ी लगी है। घड़ी में छः बजकर पचास मिनट हुए हैं। उसी समय शचीन्द्र बाबू बीच के दरवाजे से कमरे में आते हैं। उनकी उमर लगभग ३० वर्ष है। खद्दर का कुरता धोती पहने हैं। चेहरे पर गम्भीरता है। सीधे आकर डैक्स के पास कुरसी पर बैठ जाते हैं और दराज़ खोलकर कुछ ढूँढ़ते हैं। कुछ देर ढूँढ़ते हैं कि शोभना के कमरे वाला द्वार खुलता है और शोभना स्वयं कमरे में

आती है। वह लगभग २५ वर्ष की स्त्री है। उसने एक सुन्दर साढ़ी लापरवाही से पहिनी है। उसका मुख कुछ चिन्तित है। वह सीधे शचीन्द्र के पास में आकर खड़ी हो जाती है। शचीन्द्र उसकी ओर देख कर फिर भी कागज़ ढूँढ़ने लग जाते हैं।]

शोभना—आप जीजी की ओर गये थे।

शचीन्द्र—नहीं।

शोभना—(उलहने का स्वर)—नहीं गये! यह तो मैं जानती थी परन्तु आपको कुछ तो सोचना चाहिये। आप बड़े हैं तो क्या, किसी के दुःख दर्द में शामिल होने से भी आपका अपमान होता है।

शचीन्द्र—(शान्त स्वर) मैंने न जाने कितनी बार तुम्हें समझाया परन्तु तुम नहीं समझतीं। समझना ही नहीं चाहती। मैं फिर कहता हूं मुझसे यह बातें नहीं हो सकतीं। सच तो यह है कि मैं ऐसी बातें करना ही नहीं चाहता। मैं जानता हूं वह दुखी है परन्तु मेरे वहां जाने से उसका दुख दूर नहीं हो सकता।

शोभना—क्यों नहीं हो सकता? सान्त्वना के दो शब्द दुख को बहुत हल्का कर देते हैं।

शचीन्द्र—(हंसता है)—हल्का कर देते हैं परन्तु मिटा नहीं देते। हल्का दर्द तो और भी ज़हरीला होता है (गम्भीर होकर) खैर मैं इन बातों में विश्वास नहीं करता। जब मैं किसी के लिये कुछ ठोस काम नहीं कर सकता तो बातें मुझसे नहीं बनाई जातीं

और मैं कर भी कैसे सकता हूं। मैं किसी को असहाय कैसे समझूं ?

शोभना—(दुख भरा स्वर) मैं करने को कब कहती हूं। वह तो आपकी अपनी बात है परन्तु मैं इतना जानती हूं कि दुनिया में रहते हुए आदमी को किसी समय सहारे की ज़रूरत हो ही जाती है। आदमी सामाजिक प्राणी है। स्वार्थ के कारण कहिये या परमार्थ के कारण।

शचीन्द्र—तुम्हें तो दर्शनशास्त्र का काफी ज्ञान है, शोभना ! पढ़ने का यही फ़ायदा है परन्तु दुख यह है कि दर्शन-शास्त्र एक नहीं है। जितने मानव हैं, जितनी उनकी बुद्धियां हैं उतने ही शास्त्र, उतने ही नियम और उतने ही विधान हैं। उतने ही क्यों ? एक एक मानव के लिये अलग अलग वस्तुओं पर अलग अलग विधान हैं। तब बोलो शोभना ! मैं क्या करूं ?

शोभना—वही जो तुम्हारी इच्छा हो। मैं आपसे जीतूंगी नहीं परन्तु जीजी इतनी असहाय है कि अपने बल जी नहीं सकेगी। उसके ससुर जीते थे तो उसे किसी का डर नहीं था, अब उसके पास सात वर्ष का मोहन है। उसकी मदद करना मनुष्य का धर्म है।

शचीन्द्र—मनुष्य का धर्म ? शोभने ! मैं अपनी मानवता से इन्कार कर सकता हूं परन्तु भाभी की मदद क्यों और कैसे करूं यह मैं नहीं समझ पाता। उसकी भी तो दुनिया है। उसका

भी परमेश्वर है, वह अपने को क्यों नहीं समझती। जो अपने को समझता है वह निर्बल नहीं होता।

शोभना—इन बातों से आपका मतलब क्या है, मैं नहीं समझती। क्या आप चाहते हैं कि वह नौकरी की तलाश करे और दरदर······

शचीन्द्र—(बीच में ही टोकता है)—मैं कहता हूं क्यों नहीं वह मेरे घर आकर अपनी ज़रूरत की चीजें उठाकर ले जाती। मैं उसे रोकूंगा नहीं।

शोभना—(हंसती है)—फिर वही पागलपन ! किस दुनियां की बातें करते हैं आप।

शचीन्द्र—मैं इसी दुनिां की बातें करता हूं। मैं फिर कहता हूं मैं उसे रोकूंगा नहीं।

शोभना—केवल भाभी को या हर किसी को।

शचीन्द्र—किसी को भी नहीं, शोभना। परन्तु इस समय ज़िकर भाभी का है। (शोभना नहीं बोलती)।

शचीन्द्र—मैं ठीक कहता हूं। मैं भाभी को बिल्कुल नहीं रोकूंगा लेकिन अपने हाथ से देने नहीं जाऊंगा। यह धर्म जिसे तुम दया करना या सहायता कहती हो मुझ से नहीं होगा। दया करुणा आदि शब्द अविश्वास के दूसरे नाम हैं। जो अपने को दूसरों की दया और करुणा के अधिकारी समझते हैं वे जीने के योग्य नहीं हैं।

शोभना—(हतप्रभ) मैं आप की बात नहीं समझती। मैं

क्या करूं ? परन्तु मैं जानती हूँ जीजी अब जी नहीं सकेगी। उसकी बात सोच कर मुझे रोना आता है और आपकी बात मानने से तो वह मर जाना ही अच्छा समझेगी।

शचीन्द्र—(धीरे से)—तब उसे मर जाना ही चाहिये। यह उसके और दुनिया के लिये शुभ होगा।

[शचीन्द्र कह कर फिर काग़ज टटोलने लगता है। शोभना की आंखें खुली की खुली रह जाती हैं, वह डैक्स को जोर से पकड़ लेती है लेकिन बोलती नहीं, शान्ति छा जाती है और परदा गिर जाता है।]

दूसरा दृश्य

[समय—लगभग प्रात: १० बजे]

[एक साधारण घर जो जगह २ से टूट गया है। बाहिर के दरवाजे से जिसकी आखिरी कोठरी दिखाई पड़ती है। चौक में सन्नाटा है। एक ओर फटा हुआ जाजम बिछा है जिस पर शोक मनाने वाली स्त्रियां आकर बैठती हैं। सामने ओसारे में एक खटोले पर बालक लेटा है। उसका म्लान और उतरा चेहरा बता रहा है कि उसे बुखार आता है। ऊपर छत में घौंसले में बैठी चिड़िया चहक रही है।

कई स्त्रियां अभी अभी गई हैं। हेमकला अकेली बैठी शून्य में ताक रही है। अभी यौवन के दिन बीते नहीं हैं परन्तु शोक की अशान्तिक चोट ने उसे कंकाल बना दिया है। उसी समय बालक पुकार उठता है परन्तु वह सुनती नहीं।]

मोहन--अम्मां !

(हेमकला नहीं सुनती ।)

मोहन—अम्मां !, ओ अम्मां ! सुनती नहीं, मुझे प्यास लगी है ।

हेमकला (चौंक कर)—क्या है मोहन ?

मोहन--प्यास लगी है ।

हेमकला--अभी पानी लाती हूँ, भैय्या ।

(पानी लेकर उसके पास जाती है । पानी पिलाती है और देखती है बुखार तेज हो आया है, चेहरा सुर्ख है ।)

हेमकला—कैसा जी है अब ?

मोहन—सिर में बहुत दर्द है ।

हेमकला—अच्छा तो मैं अभी जाती हूँ । गली के वैद्य जी से दवा ले आऊं ।

मोहन—नहीं, अम्मा ! तू मेरे पास बैठ ! जरा सिर दाबदे ।

(हेमकला मोहन का सिर गोद में रख कर दाबने लगती है । कुछ देर में सन्नाटा फैल जाता है ।)

मोहन—अम्मा ।

हेमकला—भय्या ।

मोहन—बाबा एक दिन पूछ रहे थे तू अपनी अम्मा को प्यार करता है ।

हेमकला—तुमने क्या कहा था फिर ?

मोहन—मैंने कहा था, बाबा ! अपनी मां को कौन प्यार नहीं करता ?

हेमकला—सच मोहन ! तू मुझे प्यार करता है।

मोहन—और नहीं तो तेरे छूते ही मेरे सिर का दर्द कैसे दूर होने लगता ?

हेमकला—(आंचल से आंखें पूछती है) बाबा ने और भी कुछ कहा था ?

मोहन—उन्होंने कहा था, तू मुझे भी प्यार करता है। मैंने कहा—बाबा ! मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ। तब बाबा ने मुझे छाती पर लिटा लिया। बोले—मोहन ! मैं तुझ से एक बात कहता हूँ, अपनी मां से कभी मत लड़ना। सदा उसका कहना मानना। मां से बढ़ कर कौन है, बेटा ! और तेरी मां तो साक्षात् अन्नपूर्णा है। और फिर मां ! बाबा रोने लगे। रोते रोते चुप हो गये और फिर कभी नहीं बोले। शशी चाचा ने आकर कहा बाबा मर गये। अम्मा ! भला मर कर बाबा कहां गये ?

हेमकला—मोहन ! तेरे सिर का दर्द ठीक है न ? मैं दवा ले आऊँ। देर होने से वैद्य जी नहीं मिलेंगे।

मोहन—पर अम्मां, मैं अकेला कैसे रहूँगा ? तू उठी और दर्द फिर होने लगेगा। बाबा होते तो वे दवा ले आते ! अम्मां ! बाबा कहां गये ?

हेमकला—मोहन ! यह बात तेरे शशी चचा बता देंगे। दिन में तुझे डरना नहीं चाहिये (शोभना का आना) लो तुम्हारी

चाची आ गई। अब तो मैं जा सकती हूँ।

शोभना—जीजी! मोहन क्यों लेटा है?

हेमकला—बहू! इसे चार दिन से बुख़ार चढ़ा है, उतरता ही नहीं।

शोभना—दवा दी है न?

हेमकला—तुलसी के पत्ते पीस कर पिलाये थे।

शोभना—तुलसी के पत्ते !!

हेमकला—हां, शोभना! तुलसी के पत्ते बुखार के लिये बड़ी अक्सीर दवा है। लेकिन इसके सिर में दर्द बहुत तेज़ है। सोचती हूं वैद्य जी से कुनैन ले आऊँ। उनके यहाँ तो बंटती है न।

शोभना—बंटती तो है, लेकिन जीजी! यह बुखार क्या डाक्टर की दवा के बिना उतर सकता है। मलेरिया है, ज्यादा दिन हो गये तो मियादी बन जावेगा।

(उसी समय शचीन्द्र वहां आते हैं। शोभना एक ओर हट जाती है। शचीन्द्र ने शोभना की बात सुन ली है।)

शचीन्द्र—डाक्टर की दवा का क्या ज़िकर था भाभी! और मोहन क्यों लेटा है? (पास जाकर) अरे! इसे तो तेज बुखार चढ़ा है। आज कल मलेरिया बहुत चल रहा है।

हेमकला—हां! मलेरिया ही जान पड़ता है। वैद्य जी से कुनैन लेने जा रही थी। शोभना कहती है बुखार डाक्टर की दवा के बिना नहीं उतरेगा। कहीं मियादी न बन जावे।

शचीन्द्र—(हँसता है) भाभी, तुम्हारी देवरानी का तो दिमाग बिगड़ा है। पैसे की गरमी है। इस देश के लाखों आदमी डाक्टर की दवा तो क्या, खैरात की कुनैन भी नहीं पाते, लेकिन फिर भी वे बीमार पड़ते हैं और अच्छे हो जाते हैं।

हेमकला—ठीक है, भइया! बेचारी शोभना अभी इन बातों को नहीं जानती और फिर वह मोहब्बत के मारे ही तो कह रही थी।

शचीन्द्र—(हँसता है) मोहब्बत तो मालूम पड़ती है शोभना में बहुत ज्यादा है। मुझे कहती रहती है—तुम भाभी के पास नहीं जाते। भाभी का काम नहीं करते। भाभी गरीब है न? सो भाभी! कुनैन मैं ला देता हूँ। तुम मोहन के पास बैठो।

हेमकला—(हँसती है) तुम दोनों पगले हो। अरे! तुम्हारे सिवाय मेरा कौन है जो मेरा काम करेगा। और अमीरी गरीबी तो भगवान की देन है। तुम बने रहो, मोहन किसी लायक हो जाये तो मेरे से बढ़कर अमीर कौन होगा।

(शचीन्द्र बीच ही में बाहर चला जाता है। शोभना हेमकला को देखती रहती है। हेमकला मोहन के पास बैठ जाती है।)

शोभना—कुछ भी हो जीजी। खैरात की कुनैन से बुखार नहीं उतरा करता।

हेमकला—तू नहीं जानती शोभना! मोहन को कई बार बुखार आया है। या तो तुलसी के पत्ते पीने से जाता रहा, नहीं

तो कुनैन के खाते ही उतर गया । हां कुनैन जरा कड़वी जरूर है सो यह तो मशहूर है कि दवा कड़वी ही अच्छी होती है। डाक्टर तो पानी का पैसा लेते हैं । वह तो पैसा खोना है ।

शोभना—हां, जीजी । पैसा खोना बुरा है परन्तु पैसे का जमा करना ही कौन सी अच्छी बात है जब कि दूसरे को उसकी जरूरत है। अच्छा जीजी ! जाती हूँ। रसोई का वक्त हो रहा है ।

(शोभना शीघ्रता से चली जाती है और हेमकला अचरज से उसे जाती देखती है। पुकारना चाहती है परन्तु फिर बैठ जाती है। सन्नाटा छा जाता है । परदा गिरता है ।)

———

तीसरा दृश्य

[वही प्रथम दृश्य वाला कमरा । समय सन्ध्या के ६ बजे। शोभना और शचीन्द्र दोनों फर्श पर बैठे हैं। शोभना साड़ी पर फूल काढ़ रही है और शचीन्द्र अनमने से कुछ पढ़ने की चेष्टा कर रहे हैं। नीचे से नौकरों के काम करने की आवाज़ आती रहती है। वे दोनों भी बातें करते जाते हैं। धीरे धीरे बात अधिक और काम कम हो जाता है। शचीन्द्र उठ कर पंखा तेज कर देते हैं।]

शोभना—लेकिन मैं पूछती हूँ खैरात की कुनैन लाते समय आपको तनिक भी खयाल नहीं आया। मैं तो लाज के मारे गड़ी जा रही थी। इससे अच्छा तो आप जाते ही नहीं। जीजी क्या सोचती होंगी ।

शचीन्द्र—भाभी तुम्हारी तरह बुद्धिहीन नहीं है। वह जानती है कि वह किस योग्य है।

शोभना—और आप किस योग्य हैं यह भी आप जानते हैं।

शचीन्द्र—शोभने! जीवन में एक ही बात पर मुझे गर्व है और वह यही है कि मैं अपने को जानने की चेष्टा में लगा हुआ हूँ। मैं चाहता हूँ सब अपने को जानें। अगर वह जरा भी अपने अन्दर झांक सकेंगे तो देखेंगे कि वे सब योग्य हैं। तब मैं किसी की मदद करके उसे अपने को छोटा समझने को मजबूर कैसे करूं।

(सहसा हेमकला की आवाज़ सुन पड़ती है।)

हेमकला—(दूर से) शोभना! कहां हो बहू?

शोभना—(उठती हुई) आई जीजी (शचीन्द्र की ओर देख कर) जीजी केवल आई है। न जाने क्या बात है? मोहन तो ठीक है!

शचीन्द्र—मोहन तो ठीक ही होगा, नहीं तो भाभी आप कैसे आती। (बाहिर की तरफ) भाभी! ऊपर आ जाओ!

(कुछ क्षण बाद हेमकला वहां आती है। वह घबराई सी जान पड़ती है। शचीन्द्र बैठा रहता है, शोभना आगे बढ़ जाती है।)

शोभना } एक साथ— { मोहन कैसा है, जीजी?
शचीन्द्र } एक साथ— { क्या बात है भाभी?

हेमकला—मोहन ठीक है शोभना। हां, शचीन्द्र! तुम्हारा कुछ खोया गया है?

शचीन्द्र (अचरज से)—खोया गया ! नहीं तो भाभी ! मैंने तो कुछ नहीं खोया ।

शोभना—(मुस्कराती है) ये खोयेंगे । खूब भाभी । इनकी जेब में चार पांच आने, पाकेटबुक और एक पेन के अतिरिक्त और रहता ही क्या है ?

हेमकला—लेकिन………

शचीन्द्र—(बीच ही में)—भाभी आखिर तुम्हें मिला क्या है ।

शोभना—क़ीमती चीज़ होगी ?

हेमकला (एकदम)—पांच सौ रुपये के नोट ।

शचीन्द्र
शोभना } (अचरज से एक दम)
—पांच सौ रुपये के नोट !

हेमकला—हां, भइया ! यही तो बात है । मेरा दिल बैठा जाता है, न जाने क्या होगा ? न जाने किस दुश्मन ने आग लगाई है । विधवा के सभी दुश्मन हैं ।

शोभना—ठीक कहती हो, जीजी ! नहीं तो इतना रुपया कहां से आ सकता है ।

शचीन्द्र—लेकिन मिला कहां ?

हेमकला—कोई पांच बजे होंगे, मोहन का बुख़ार ज़रा कम हुआ था, मैंने सोचा खिचड़ी डाल दूं ! वह तो खायेगा नहीं । उसके लिये दूध अभी नहीं मिला था । यह सोच कर जैसे ही रसोई घर में गई तो टीन की छत पर एक लिफाफा देखा । उठाया तो ये नोट निकले । साथ में कई घर लगते हैं । उन में

अमीर भी हैं पर क्या वे पैसे से मुझे खरीदना चाहते हैं……।

(कहती कहती हेमकला कुछ तेज़ हो जाती है। आँखें लाल होती है और पानी भर आता है। शोभना उस के और भी पास आ जाती है।)

शोभना—जीजी! इस दुनिया में जो न हो वही थोड़ा। लेकिन तुम घबराती क्यों हो। दो चार दिन बाद वह कुछ और भी तो करेगा।

शचीन्द्र—भाभी, वह लिफ़ाफ़ा मुझे दिखाओ तो। (हेमकला लिफ़ाफा निकाल कर देती है। बाज़ार का साधारण लिफ़ाफ़ा है। शचीन्द्र उसे खोलता है, उसमें पांच नोट सौ सौ रुपये के हैं। गिन कर उसी में रख देता है। फिर सहसा लिफ़ाफ़ा लौटाते लौटाते चौंक पड़ता है।)

शचीन्द्र—अरे भाभी, इस में तो कुछ लिखा है।

शोभना
हेमकला } (एक साथ)—क्या लिखा है?

शचीन्द्र—(पढ़ता है) "मैं तुम्हें नहीं जानता। न तुम मुझे जानती हो। परन्तु मैं इतना ज़रूर जानता हूँ कि तुम्हें पैसे की ज़रूरत है और मेरे पास मेरी ज़रूरत से ज्यादा पैसा है। रुपये की क़ीमत उसके उपयोग में है। मैं जानता हूं अगर मैं तुम्हें रुपया देने आऊँगा तो तुम लोगी नहीं, न जाने क्या समझो। बात ठीक भी है। मैं भी किसी को रुपया देकर उस पर अहसान करना और अपने को बड़ा समझना नहीं चाहता। बड़ा बनने की भावना में किसी को छोटा बनाने की भावना है। यह मैं बुरा समझता हूं। इसी से मैं तुम्हारे अनजाने ही यह पाँच सौ रुपये

तुम तक पहुंचाने की धृष्टता कर रहा हूं। तुम इन्हें अपने काम में ला सकती हो। लेकिन फिर भी तुम ऐसा करना बुरा समझती हो तो मेरी एक प्रार्थना है कि अब तो तुम इस रुपये का उपयोग करलो। भविष्य में जब तुम्हारा बच्चा कमाने योग्य हो और तुम रुपया जोड़ सको तो किसी जरूरतमन्द को इसी तरह मेरा रुपया लौटा सकती हो। आज हमारे देश में (जो वास्तव में हमारा नहीं है) ऐसे आदमियों की कमी नहीं है।"

(शचीन्द्र ने एक सांस में यह सब पढ़ा और दोनों ने एक सांस में इसे सुना। सब के मुख पर कौतूहल और हर्ष साकार हो उठे। सबने मानो देवता को साकार देखा। वे कुछ क्षण तो बोल नहीं सके। फिर सहसा हेमकला ने लिफ़ाफ़ा अपने हाथ में ले लिया और बोली—)

हेमकला—मैं नहीं जानती भगवान है या नहीं, परन्तु सुनती आई हूं वह है। वह हो या न हो परन्तु इस दुनिया में भगवान जैसे मनुष्य जरूर हैं। शचीन्द्र! मैं कहती हूं मैं उसकी बात करूंगी।

(और वह शीघ्रता से चली जाती है। शोभना एक बार शचीन्द्र को देखती है फिर शीघ्रता से जीजी के पीछे जाती है।)

शोभना—जीजी, जीजी! सुनो तो, मैं भी आती हूँ।

(शचीन्द्र अकेला खड़ा रह जाता है। क्षण भर गम्भीर रहता है फिर मुस्करा उठता है।)

शचीन्द्र—भाभी अपने को पहचान रही है, यह शुभ है। (पुकार कर) शोभना! ठहरो मैं भी चलता हूँ।

(वह भी चला जाता है। बिजली का पंखा उसी तेज़ चाल से चल रहा है, किताब के पन्ने उड़ते हैं और इसी अवस्था पर परदा गिर जाता है।)

★

टाईटल शान्ति प्रेस, नया बाज़ार, में मुद्रित।